इकाई 20 अज्ञेय के काव्य में आधुनिक भाव-बोध

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 छायावादोत्तर कविता : प्रयोगवाद और नई कविता
20.2.1 प्रयोगवाद : रोमांटिक तथा आधुनिक दृष्टि का द्वंद्व
20.2.2 नई कविता : वैयक्तिकता तथा सामाजिक सरोकार : संबंध और द्वंद्व
20.2.3 मूल्यबोध और समकालीन कविता
20.3 अज्ञेय : आत्मबोध और जीवन दृष्टि
20.3.1 'भग्नदूत' (1933) से 'आँगन के पार द्वार' (1961) तक
20.3.2 'आँगन के पार द्वार' के बाद अज्ञेय
20.4 अज्ञेय की कविता : आधुनिक बोध और संवेदना
20.4.1 समय का बोध
20.4.2 स्वाधीन चेतना : व्यक्तित्व की खोज
20.4.3 प्रकृति, प्रेम, सौंदर्य, आत्मदान, मृत्यु आदि अनुभव
20.5 प्रमुख कविताओं के आधार पर अज्ञेय का मूल्यांकन
20.5.1 'असाध्य वीणा' में अज्ञेय
20.5.2 अन्य कविताएँ
20.6 सारांश
20.7 प्रश्न

20.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि :

- आधुनिक भाव-बोध के कवि के रूप में अज्ञेय की क्या विशेषताएँ हैं
- अज्ञेय की कविताओं के आधार पर उनके आधुनिक बोध और संवेदना का क्या रूप है
- प्रमुख कविताओं के आधार पर अज्ञेय का मूल्यांकन कैसे किया जाए।

20.1 प्रस्तावना

अज्ञेय जैसे कवि को स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ने का अर्थ है उनके **व्यक्तित्व, आधुनिक बोध, रचना प्रक्रिया, नएपन के प्रति आकर्षण** - इन सबकी समझ के साथ पढ़ना। यह याद करते हुए पढ़ना कि एक आधुनिक कवि को पढ़ रहे हैं जिसकी दृष्टि में कविता का बहुत सारी चीज़ों के साथ संबंध बदल गया है। उस कवि को पढ़ रहे हैं जिसके व्यक्तित्व को भूल पाना कठिन है। एक ओर कविता में सिद्धांत के तौर पर अज्ञेय व्यक्तित्व से दूरी बनाने की बात करते हैं तो दूसरी ओर कुछ ऐसा करते रहते हैं कि उनके एक अलग व्यक्तित्व की उपस्थिति कविता में बनी रहती है। छायावादी कवि का व्यक्तित्व और तरह से कविता में आता था। वह आत्मानुभूति की कविता थी। अज्ञेय **मैं** से दूरी बनाकर चलते हैं, लेकिन व्यक्तित्व की स्वतंत्रता का बोध पाठक को कराते रहते हैं। एक स्तर पर उनकी कविता ही **व्यक्तित्व की खोज** की कविता का रूप ले लेती है। पहले ही ध्यान में रखें कि अज्ञेय **प्रयोगवाद** नामक काव्य-आंदोलन के प्रवर्तक के रूप में भी जाने जाते हैं। वे कहते रहे हैं कि प्रयोग का कोई वाद नहीं होता। पर **प्रयोगशीलता** को कविता की प्रमुख समस्या के रूप में बार-बार विश्लेषित भी करते रहे हैं। यह बात छिपी नहीं रह गई है कि अज्ञेय ने प्रयोगवाद की दिशा निर्धारित की है। उसका काव्यशास्त्र बनाया है। **रोमांटिक भाव-बोध में स्वाधीनता** का, **आत्मचेतना** का अनुभव जोड़ दें तो अज्ञेय का आधुनिक भाव-बोध समझ में आने लगेगा। अज्ञेय वस्तु और शिल्प की नवीनता

के रूप में कितने सजग हैं, यह उनके आधुनिक अनुभव या भाव-बोध को देखते ही समझ सकते हैं।

अज्ञेय को पढ़ते हुए छायावादोत्तर कविता के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना होगा। आरंभिक कविताओं में अज्ञेय छायावाद के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं, परंतु वहीं कुछ-कुछ नएपन का आग्रह भी दिख जाता है। छायावाद के अंत के साथ प्रगतिवाद आया। यह 1935-36. का समय है। अज्ञेय प्रगतिशील लेख संघ के आयोजनों में उपस्थित रहे परंतु व्यक्तित्व की स्वतंत्रता शीघ्र ही उनका प्रमुख आग्रह बनी तथा 1943 में **तार सप्तक** का संपादन भले ही संयोग हो, तार सप्तक में कवि अज्ञेय का अपना वक्तव्य और संपादक अज्ञेय का वक्तव्य **प्रयोग** और **अन्वेषण** को कविता का महत्वपूर्ण प्रयोजन बताते हैं। प्रगतिवाद सामाजिक चेतना के साथ अपनी काव्य-भूमि का निर्माण करता है। प्रयोगवाद की मुख्य समस्या नए अनुभव, नए मूल्य-बोध और भाषा-शिल्प के नए प्रयोग की है।

अज्ञेय को कवि के रूप में पढ़ने के लिए **दूसरा सप्तक** की भूमिका के इस अंश को ध्यान में रखें। दूसरा सप्तक (1951) की भूमिका के शब्द हैं - वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है। राग वही रहने पर भी **रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ** बदल गई हैं। कवि नए तथ्यों को उनके साथ नए रागात्मक संबंध जोड़कर नए सत्यों का रूप दे - यही नयी रचना है। यह बात ध्यान में रहे कि तीसरा सप्तक (1959) को **नयी कविता** के एक प्रतिनिधि चयन के रूप में देखा जाता है जिसकी भूमिका में अज्ञेय कहते हैं - 'नयी कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयाम भाषा से संबंध रखता है।' अब हम देख सकते हैं कि अज्ञेय की कविता की मुख्य पहचान है - वस्तु और भाषा तथा रूप की नवीनता। उन्हें पढ़ते हुए कविता की समग्र बनावट (अंतर्वस्तु और भाषा) पर ध्यान देना ज़रूरी है। याद रखना ज़रूरी है कि अज्ञेय की कविता आधुनिक भाव-बोध की कविता है जो पहले से प्रचलित काव्य-विधान से संभव नहीं है।

अज्ञेय के पाठ के अनुकूल दृष्टि और पद्धति विकसित करते हुए उनकी कविता **कलगी बाजरे की** पर ज़रूर ध्यान जाना चाहिए। यह कविता बताती है कि एक ढर्रे पर चलने वाली कविता से अज्ञेय का विरोध कहाँ और क्यों है। कुछ पंक्तियाँ हैं :

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हायी कुंई,
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही :
ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच!
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

सही पद्धति यही होगी कि हम अज्ञेय की विशेषताओं को कविता में ही देखें और समझें। कई बार कविता का अर्थ जानना ज़रूरी या पर्याप्त नहीं होता। समग्र पाठ और प्रभाव ग्रहण ज़रूरी होता है।

20.2 छायावादोत्तर कविता : प्रयोगवाद और नई कविता

अज्ञेय को व्यापक अर्थ में आधुनिक कवि के रूप में देखना चाहिए। मुख्यतः वे प्रयोगवादी या प्रयोगशील कवि हैं। उनकी दृष्टि में नयी कविता प्रयोगशील कविता का ही विकास है। परंतु याद रहे नयी कविता यदि एक अर्थ में प्रयोगवादी या प्रयोगशील कविता का विकास है तो दूसरे अर्थ में प्रगतिवादी या प्रगतिशील कविता का विकास है। नयी कविता में प्रगतिवाद का सामाजिक सरोकार भी है और प्रयोगशीलता की सहज स्वाभाविक आकांक्षा भी। चमत्कारपूर्ण प्रयोग का आग्रह नयी कविता में कम है या नहीं है। अज्ञेय जब 'नदी के दीप' या 'यह दीप अकेला' जैसी कविता लिखते हैं तो वैयक्तिकता और सामाजिकता का द्वंद्व भी दिखाई देता है। जब वे कहते हैं:

यह दीप अकेला स्नेह-भरा
है गर्व-भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

तो सामाजिकता को स्वीकार भी करते हैं परंतु आगे याद दिलाते हैं कि सर्जक व्यक्तित्व का अकेलापन अद्वितीयता खोने के लिए नहीं है। यह सामाजिकता और वैयक्तिकता का द्वंद्व अज्ञेय की कविता का बहुत ज़रूरी संदर्भ है। यह अज्ञेय की कई कविताओं में प्रकट है। अज्ञेय 'साँचे ढले समाज' की जगह 'अच्छी कुंठारहित इकाई' के पक्ष में हैं। अज्ञेय का यह एक मुख्य काव्य-अभिप्राय है।

20.2.1 प्रयोगवाद : रोमांटिक तथा आधुनिक दृष्टि का द्वंद्व

अज्ञेय ने जिस काव्यादर्श को प्रयोगवाद में क्रमशः मूर्त किया उसमें यदि एक द्वंद्व 'रोमांटिक' और 'आधुनिक' के बीच था तो दूसरा 'परंपरा' और 'आधुनिकता' के बीच। रोमांटिक अनुभव का जान-बूझकर निषेध अज्ञेय के यहाँ नहीं है। परंतु जैसा पहले संकेत किया गया, 'आत्म-चेतना' या खास तरह के 'आत्म-बोध' से जुड़कर वही आधुनिक-बोध बन जाता है। इसी प्रकार, अज्ञेय परंपरा को अस्वीकार नहीं करते पर उसे 'पोटली में बाँधकर रखा गया पाथेय' भी नहीं मानते। उससे एक तनावपूर्ण संबंध बनाते हुए वे 'आधुनिक अनुभव' तक पहुँचते हैं। यह तनाव ही अज्ञेय को आधुनिक भाव-बोध का कवि बनाता है।

'भग्नदूत' में अज्ञेय का अनुभव और कहने का ढंग छायावाद से भिन्न नहीं है। ये कविताएँ हैं भी छायावाद वाले दौर की हीं - 1929 से 1932 के बीच कीं। संग्रह छपा 1933 में। विषय वही - ससीम असीम के प्रणय प्रसंग। 'चिन्ता' (1941) में कुछ भिन्नता है। प्रेम का अनुभव कुछ प्रगाढ़ है। प्रेम सख्यभाव लिए हुए। 'इत्यलम्' (1946) में 1933 से 1946 तक की कविताएँ संकलित हैं। इनमें कहीं प्रेम की विफलता है तो कहीं बौद्धिकता का रंग लिए आत्म-व्यंग्य। कहीं स्त्री-देह के प्रति और कहीं प्रकृति के लिए आकर्षण। रोमांटिक और आधुनिक स्वभाव का द्वंद्व 'हरी घास पर क्षण भर' (1949), 'बावरा अहेरी' (1954) और 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये' (1957) में अधिक गहरा हुआ है। 'हरी घास पर क्षण भर' के आगे अज्ञेय नयी कविता आंदोलन के निकट हैं और उसपर मिली-जुली प्रतिक्रिया करते हैं। अनुभूति और संवेदना की गहराई भी इस कालखंड की कविताओं में प्रकट है। प्रयोगवाद-काल की कविताओं में मुखरता है। एक तरह का उद्दाम अतिकथन भी है - 'आह मेरा श्वास है उत्तप्त / धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार / प्यार है अभिशप्त / तुम कहाँ हो, नारि।' पर 'मौन भी अभिव्यंजना है' - यह अज्ञेय समझते हैं और अधिक सांकेतिकता की ओर उन्मुख हैं।

20.2.2 नई कविता : वैयक्तिकता तथा सामाजिक सरोकार : संबंध और द्वंद्व

एक सुविधापूर्ण विभाजन यह है कि 1950 से 1960 के बीच की कविता नयी कविता है। इस दृष्टि से 'तीसरा सप्तक' (1959) को नयी कविता का प्रतिनिधि संग्रह माना जाता है। 1960 के बाद की हिंदी कविता एक अलग प्रकार के मोह-भंग की सूचक है। साठोत्तरी कविता लगभग

एक अवधारणा बन चुकी है। अज्ञेय आगे की कविता के साथ जुड़ाव नहीं अनुभव करते। यही कारण है कि 'चौथे सप्तक' के प्रकाशन का आगे की नयी कविता पर कोई प्रभाव नहीं है।

नयी कविता वाले दौर का एक प्रमुख द्वंद्व है - **व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और सामाजिक दायित्व** का द्वंद्व। इस विषय पर न केवल तीव्र विचार-मंथन दिखाई देता है, बल्कि अज्ञेय की 'नदी के दीप', 'यह दीप अकेला' कविताएँ भी पाठक को प्रभावित करती हैं। इनमें कवि सामाजिक प्रवाह में घुल-मिल जाना चाहता है, पर **सृजनात्मकता की अद्वितीयता** और विशिष्टता बचाकर।

क)

यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा?
पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा?
यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित :
यह दीप, अकेला, स्नेह-भरा
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

-- यह दीप अकेला

ख)

किंतु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा।
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किंतु हम बहते नहीं हैं
क्योंकि बहना रेत होना है।

-- नदी के द्वीप

अज्ञेय के ये दोनों उदाहरण 'यह दीप अकेला', 'नदी के द्वीप' -- इन प्रतिनिधि कविताओं से लिए गए हैं। अकेला दीपक जो स्नेह-भरा गर्व-भरा है सर्जनात्मक अद्वितीयता अर्थात् वैयक्तिकता का प्रतीक है। अज्ञेय उसे पंक्ति को अर्थात् सामाजिकता को दे देना चाहते हैं। पर उसके अकेलेपन को जीवंत, स्वाधीन रखकर। इसी द्वीप का द्वीपत्व महत्वपूर्ण है। वह धारा में है, धारा से ही बना है, पर जब बन गया है, तो धारा में विलीन हो जाना उसे स्वीकार नहीं। क्योंकि बह जाना रेत हो जाना है और रेत की तरह धारा में मिलने की सार्थकता ही क्या। इसलिए धारा में होकर भी उसकी अद्वितीयता बनी रहे, यही कवि को भी स्वीकार है।

20.2.3 मूल्यबोध और समकालीन कविता

अज्ञेय को पढ़ते हुए आप बराबर अनुभव करेंगे कि वे अवधारणाओं, विचारों, मूल्यों के कवि हैं पर वे औसत मूल्य को भी अपने निजी व्यक्तित्व के स्पर्श से नया मूल्य बना देते हैं। नयी कविता आंदोलन के बाद भी वे समकालीन काव्य परिदृश्य पर अपनी निजी पहचान बनाए रख सके - यह अपने आप में महत्वपूर्ण है। प्रेम, विषाद, मृत्यु का उनका अपना अनुभव कविता में नया विचार बनता है। उनका मूल्य-बोध उनका काव्य-मुहावरा बन जाता है। कभी उनका कथन इतना सादा है :

मैं आस्था हूँ
तो मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ
मैं व्यथा हूँ
तो मैं मुक्ति का श्वास हूँ

कभी संकेत पर भी उनका सारा बल है। कविता प्रेम की हो तो ज़रूरी नहीं कि प्रेम की अभिव्यक्ति ढर्रे पर चलकर संभव हो। 'उधार' कविता में एक तरह की नाटकीयता है, पर प्रेम एक असीमित अकथित मूल्य है जिसे संवेदनशील पाठक ग्रहण कर सकता है :

मैंने कहा : प्यार? उधार?
-- --
उस अनदेखे अरूप ने कहा - हाँ,
क्योंकि ये ही सब चीज़ें तो प्यार हैं -
यह अकेलापन, यह अकुलाहट,
यह असमंजस, अचकचाहट,
आर्त अनुभव.....
यह अंधकार में जाग कर सहसा पहचानना
कि जो मेरा है वही ममेतर है।

महत्वपूर्ण है प्यार की अस्पष्टता, प्यार की व्यापकता। पर प्यार ऐसा कि बंधना कोई शर्त नहीं है। यही है प्रेम के प्रति एक आधुनिक दृष्टिकोण। प्रेम प्रगाढ़ता में बाँधता नहीं, मुक्त करता है। 'सागर' श्रृंखला की कविताओं में सागर मुक्त करता है। करुणा, मानवीय आत्मीय सहज मूल्य हैं। 'आत्मदान' सहज मूल्य है। 'हम खोते हैं तो होते हैं।'

20.3 अज्ञेय : आत्मबोध और जीवन दृष्टि

अज्ञेय का आत्मबोध आत्मलीनता तक सीमित नहीं है। आप अनुभव करेंगे कि अज्ञेय का आत्म-बोध व्यक्ति-सत्य और व्यापक सत्य के बीच एक नया संबंध बनाता है। अज्ञेय जीवन से प्रेम करते हैं पर इस प्रेम को निस्संग विस्मय का-सा भाव बताते हैं। जीवन सुंदर है आश्चर्यजनक रूप से, सुंदर है पर ज़रूरी है कि जीवन को सीधे देखें, काँच में से न देखें। काँच में से देखेंगे तो रूपों में भटक जाएंगे। जीवन तक पहुँचेंगे ही नहीं। 'सोन मछली' कविता यही कहती है। प्रतीक नया नहीं है पर अर्थ नया है। संकेत के लिए बिम्ब नया है :

हम निहारते रूप :
काँच के पीछे हाँप रही है मछली।
रूप-तृषा भी
(और काँच के पीछे)
है जिजीविषा।

यहाँ मछली का प्रतीक सत्य के अन्वेषण में सहायक है। अज्ञेय की जीवन-दृष्टि के प्रमुख संदर्भ हैं - व्यक्ति स्वातंत्र्य और व्यक्तित्व का विसर्जन, या अहं का विलयन या आत्मदान। जैसा पहले अज्ञेय की कविताओं (यह दीप अकेला, नदी के द्वीप) के उदाहरणों को ध्यान में रखकर कहा गया है - व्यक्तित्व एक ओर विराट सामाजिकता के प्रति समर्पित है - ऐसे, कि उसे दे दिया जाना है, पर दूसरी ओर उसका विशिष्ट अद्वितीय पक्ष जो सर्जनात्मकता का स्रोत है, उसे बचा लेना भी कवि-कर्म का हिस्सा है।

20.3.1 'भग्नदूत' (1933) से 'आँगन के पार द्वार' (1961) तक

अज्ञेय के आत्म-बोध को कविताओं में देखें। जब वे कहते हैं :

दुःख सबको माँजता है
और -
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।
-- 'हरी घास पर क्षण भर से'

यहाँ संकेत है कि दुःख आत्म-परिष्कार और आत्म-प्रसार, दोनों में किस तरह सहायक है। 'बावरा अहेरी' में अहेरी सूर्य है। कवि सूर्य से प्रार्थना करता है कि वह उसके मन-विवर में छिपी 'कलौंस' या कालिमा को दूर करे - भाषा प्रश्न की, पर प्रार्थना के आशय के साथ :

एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड़कर क्या तू चला जायेगा?

-- बावरा अहेरी

'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959) और 'आँगन के पार द्वार' (1961) की कविताओं में आत्म-बोध, आत्मदान का बोध है। वही कवि की जीवन-दृष्टि भी है। सर्जनात्मक अनुभव एक आस्तिक का-सा अनुभव है। उसे आलोचक एक नए आध्यात्मिक अनुभव के रूप में भी देखते आए हैं। एक नए रहस्यवाद के रूप में :

मैंने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर के झाग से :
रंगी गयी क्षण भर
ढलते सूरज की आग से।

अज्ञेय स्वीकार करते हैं कि नया काव्यानुभव उनके लिए 'सूने विराट' के सम्मुख एक 'आलोक छुआ अपनापन' है। वही 'नश्वरता के दाग' से 'उन्मोचन' भी है। वही 'काल' में 'कालातीत' को संभव करने का क्षण है। ये धारणाएँ बार-बार आपके सामने अज्ञेय के पाठ के क्रम में आएंगी।

20.3.2 'आँगन के पार द्वार' के बाद अज्ञेय

अज्ञेय की जिजीविषा उन्हें एक नए मानववाद के कवि के रूप में देखने के लिए प्रेरित करती है। यह केवल धारणा या विचार नहीं, जीवन-बोध है, सजग काव्य-बोध है। 'बना दे चितेरे' कविता की अंतिम पंक्तियाँ हैं :

तू अंतहीन काल के लिए फलक पर टाँक दे -
क्योंकि यह माँग मेरी, मेरी, मेरी है कि प्राणों के
एक जिस बुलबुले की ओर मैं हुआ हूँ उदग्र, वह
अंतहीन काल तक मुझे खींचता रहे ----------

'मानव अकेला' मनुष्य में कवि की अदम्य आस्था का संकेत है। यहाँ 'मानव' को 'अँगारे-सा', 'भगवान-सा', 'अकेला' कहना विशेष अर्थ रखता है। जहाँ लोकाचार राख की युगों-युगों की परतें हैं - मनुष्य है कुछ ऐसा :

भीड़ों में
जब जब जिस-जिससे आँखें मिलती हैं
वह सहसा दिख जाता है
मानव
अंगारे-सा भगवान-सा
अकेला।

रमेशचन्द्र शाह अज्ञेय के एक सजग पाठक-आलोचक हैं। वे मानते हैं कि अज्ञेय के लिए आधुनिकता 'संस्कार' है, संस्कारवान होने की क्रिया है, बल्कि एक प्रक्रिया है। इसलिए आधुनिकता उनके लिए पश्चिमी ढंग का विच्छिन्नता-बोध नहीं है। अज्ञेय का आत्म-बोध उस महामौन के अनुभव तक पहुँचना चाहता है जो अविभाज्य है। 'असाध्य वीणा' में कलाकार ने सृजन प्रक्रिया के इस रहस्य को जान लिया है और दूसरों पर प्रकट भी कर दिया है। इस कविता पर हम आगे भी विचार करेंगे। अभी यही पंक्तियाँ देखें जिनसे अज्ञेय के आत्म-बोध और

जीवन-दृष्टि का अनुमान किया जा सकता है। आप इन पंक्तियों को सतर्कता से पढ़ें - यहाँ एक-एक शब्द महत्वपूर्ण है :

श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में -
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था -
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी -
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रेमय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।

20.4 अज्ञेय की कविता : आधुनिक बोध और संवेदना

पहले ही यह स्पष्टीकरण ज़रूरी है कि आधुनिकता समय-सापेक्ष संज्ञा है और वह मूल्य-बोधक भी है। समसामयिकता से एक सीमित अर्थ का बोध होता है। यहाँ मूल्य का आग्रह नहीं है। आधुनिकता मूल्य-बोध है और उसका संदर्भ व्यापक है। इसलिए इलियट जैसे विचारक परंपरा के साथ द्वंद्वात्मक संबंध से आधुनिक भाव-बोध को सम्बद्ध करते रहे हैं। आधुनिकता परंपरा को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करती। उससे प्रश्न करंती है। प्रश्नशीलता आधुनिक भाव-बोध की अभिव्यक्ति की खास युक्ति है। वह रीति या रूढ़ि के विरूद्ध है। आधुनिकता में विद्रोह और विक्षोभ का विशेष अनुभव भी शामिल है। निर्वैयक्तिकता भी उसका खास लक्षण है। अज्ञेय जैसे आधुनिक बोध के कवि के लिए प्रेम सामान्य प्रेम नहीं, दुख सामान्य दुख नहीं, मुक्ति या मृत्यु सामान्य मुक्ति या मृत्यु नहीं। प्रकृति भी वही नहीं, जो दूसरों के लिए है। अज्ञेय को श्वेत चाँदनी 'वंचना' लगती है, आकाश का गहन विस्तार 'झूठ' लगता है, पूर्णिमा की शांति 'निस्सार' लगती है। आधुनिकता का बोध कभी आघात पैदा करने वाला है।

20.4.1 समय का बोध

आधुनिक औद्योगिक बस्तियाँ, पहाड़ियों से घिरी छोटी-सी घाटी में विकर्षण पैदा करती हैं। मुँहझांसी चिमनियाँ दिन-रात धुआँ उगलती हैं। यह समय है। यह अनुभव भी समय का विशिष्ट अनुभव है : 'मैं वह धनु हूँ जिसे साधने / में प्रत्यंचा टूट गयी है।' कविजनोचित सत्य से हटकर यह अनुभव भी एक बदले हुए समय का सच है :

क्रौंच बैठा हो कभी बल्मीक पर
तो मत समझ
वह अनुष्टुप बाँचता है संगिनी के स्मरण में
जान ले वह दीपकों की टोह में है -----

- 'हरी धास पर क्षण भर' से

अज्ञेय समय को सीधे या स्थूल रूप में प्रत्यक्ष नहीं करते। समय के बदलने के साथ प्रेम, प्रकृति और अन्य जीवनानुभवों का अर्थ कैसे बदल जाता है यह दिखाते हैं। 'दूर्वाचल' कविता प्रकृति के बहाने प्रेम को एक नयी दृष्टि से देखने और व्यक्त करने वाली कविता है। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

20.4.2 स्वाधीन चेतना : व्यक्तित्व की खोज

रचनात्मक स्वाधीनता और **व्यक्तित्व की खोज** के संकेत अज्ञेय की आरंभिक कविताओं में भी मिलते हैं। जब वे लिखते हैं 'सखि आ गये नीम को बौर' तो वे परंपरा से हटते हैं, परिपाटी से हटते हैं। आम्र वृक्ष से बौर का संबंध न जोड़कर, नीम से जोड़ने के पीछे अभिव्यक्ति की नई आज़ादी का बोध है। **सत्य का अन्वेषण** एक ऐसा अभिप्राय है जिसमें आप अज्ञेय की स्वाधीन चेतना का अनुभव कर सकते हैं। अज्ञेय दूसरों के दिए सत्य पर निर्भर नहीं हैं। सत्य की नई खोज करते हैं। कभी यही खोज व्यक्तित्व की खोज का रूप ले लेती है। 'घर कुटीर का छोटा-सा दिया', 'छोटी-सी ज्योति' जैसे प्रयोगों में आप अज्ञेय की स्वाधीन चेतना और व्यक्तित्व की खोज की झलक पा सकेंगे।

क) मेरे छोटे घर - कुटीर का दिया
तुम्हारे मंदिर के विस्तृत आँगन में
सहमा-सा रख दिया।

-- 'आँगन के पार द्वार' से

ख) कितनी दूरियों से कितनी बार
कितनी डगमग नावों में बैठकर
मैं तुम्हारी ओर आया हूँ
ओ मेरी छोटी-ज्योति!
कितनी बार मैं,
धीर, आश्वस्त, अक्लान्त
ओ मेरे अनबुझे सत्य! कितनी बार.....

-- 'कितनी नावों में कितनी बार' से

देखें कि यही **अनबुझे सत्य** की खोज कवि के लिए **व्यक्तित्व की खोज** भी है। अज्ञेय के लिए व्यक्तित्व की खोज **कुण्ठा-रहित इकाई** की खोज है - याद करें - 'यह दीप अकेला', 'नदी के द्वीप' जैसी कविताएँ और इस स्पष्टीकरण को देखें :

अच्छी कुण्ठा रहित इकाई
साँचे ढले समाज से.....

20.4.3 प्रकृति, प्रेम, सौंदर्य, आत्मदान, मृत्यु आदि अनुभव

अज्ञेय आधुनिक-बोध और संवेदना के कवि हैं। इसे हम और अधिक तीव्रता से अनुभव करेंगे - प्रकृति, प्रेम, सौंदर्य, आत्मदान, मृत्यु आदि अनुभवों की अभिव्यक्ति के रूप में। अज्ञेय की एक प्रसिद्ध कविता है 'द्रूर्वाचल' - यह प्रकृति और प्रेम दोनों का एक सर्वथा नया बोध प्रस्तुत करती है। आगे जब हम अज्ञेय की काव्य-भाषा और शिल्प पर विचार करेंगे तो यह कविता फिर याद आएगी। यह पूरी कविता इस प्रकार है :

पार्श्व गिरि का नम्र, चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों-सी।
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा।
विहग-शिशु मौन नीड़ों में
मैंने आँख भर देखा।
दिया मन को दिलासा-पुनः आऊँगा।
(भले ही बरस-दिन अनगिन युगों के बाद!)
क्षितिज ने पलक-सी खोली,
तमक कर दामिनी बोली -
'अरे यायावर! रहेगा याद?'

यह कविता माँग करती है कि बार-बार पढ़ें। हड़बड़ी में, जल्दी में कोई एक सीधा अर्थ निकालने से बचें। अर्थ की व्याप्ति-सी है कविता में। खुली है। नए-नए अनुमानों, अर्थों के लिए। यात्रा का अनुभव है। प्रकृति को यात्री की दृष्टि से देखा जा रहा है। कल्पना के उपयोग में कवि सक्रिय है। इस तरह यात्री और कवि एक ही हैं। एक हो गए हैं। पर्वत-प्रदेश का सुरम्य चित्र। एक अद्‌भुत बिम्ब। नम्र है - गिरि का पार्श्व। पार्श्व है, इसीलिए नम्र है। यों पूरा परिदृश्य स्निग्ध कोमलता लिए हुए है। चीड़ पंक्ति : ऊँचाई : 'डगर चढ़ती' - डगर चढ़ना, जैसे उमंगों की उठान। और नीचे पैरों में बिछी पतली नदी। जैसे 'दर्द की रेखा'। अज्ञेय का प्रयोग है - 'दर्द की रेखा'। 'दर्द' शब्द यों ही कहीं आए तो एक हल्कापन आने का डर है। परंतु यही अज्ञेय की क्षमता है - दर्द की रेखा-सरीखी खिंची है, पतली नदी। जैसे चित्र में जड़ी हो, अंकित हो। नीड़ों में विहग-शिशु। यह है राग, पेम, वत्सलता, प्रेम की फलश्रुति। फिर यह आश्वासन कि फिर आऊँगा। पर यात्री का स्वभाव नहीं है उन्हीं जगहों पर बार-बार जाना। इसलिए दामिनी का तमक के साथ व्यंग्य - 'अरे यायावर! रहेगा याद।' झूठे आश्वासन पर चोट। यात्री का अनुभव जैसे प्रेम का अनुभव। प्रेम क़ा एक वह सघन क्षण, जिसे दुहराया नहीं जा सकता।

प्रेम के क्षण दुहराए नहीं जाते - यह अज्ञेय बार-बार कहते हैं। कितनी ही कविताओं में। अज्ञेय के लिए प्रेम बिना आशा, बिना आकांक्षा के भी संभव है - यह आधुनिक बोध है प्रेम का :

ओ प्यार। कहो, है इतना धीरज,
चलो साथ
यों : बिना आशा-आकांक्षा
गहे हाथ?

'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' से

अज्ञेय के लिए प्रेम वह अनुभव है जिसमें 'अभिमान की कसक' रोने नहीं देती। अर्थात् भावुकता पर नियंत्रण-सा बना रहता है।

सौंदर्य की ऐन्द्रिक अनुभूति भी परिचित अनुभव में कुछ नया जोड़ती है। वह आधुनिक संवेदना के कारण ही :

बेल-सी वह मेरे भीतर उगी है, बढ़ती है।
उसकी कलियाँ हैं मेरी आँखें,
कोंपलें मेरी अँगुलियों में अंकुराती हैं,
फूल-अरे, यह दिल में क्या खिलता है।

प्रश्न ही सौंदर्य को एक नया आयाम देता है। कभी सागर का बोध है जो घेरता है पर निर्बंध करता है मुक्त करता है। सौंदर्य का बोध तटस्थता देता है, मुक्त करता है, यही एक आधुनिक कवि का बोध है।

अपने लिखे हुए को भी मिटाते चलना - अज्ञेय जैसे कवि के लिए यह भी आत्मदान है। 'मैं सच लिखता हूँ / लिख लिख कर सब / झूठा करता जाता हूँ।' यह निस्संगता आधुनिक बोध है। अज्ञेय के यहाँ मृत्यु का वरण है। डर नहीं है। मृत्यु का स्वीकार - एक आधुनिक कवि का स्वीकार है। प्रेम और मृत्यु अभिन्न हो जाते हैं यहाँ। देखें, कि आधुनिक कवि के बोध में विडम्बना का बोध किस तरह शामिल है :

सागर को प्रेम करना
मरण की प्रच्छन्न कामना है
मरण अनिवार्य है
प्रेम
स्वच्छंद वरण है

अज्ञेय के मृत्यु-बोध के लिए रमेशचन्द्र शाह इन पंक्तियों की याद दिलाते हैं :

शब्द यह सही है सब व्यर्थ है
पर इसलिए कि शब्दातीत कुछ अर्थ है

और निष्कर्ष निकालते हैं कि क्षण-क्षण जो मरता दिखता है वही कवि अविरल अंतःसत्व है। (अज्ञेय, रमेशचन्द्र शाह, पृ.37)

इस तरह हम देख सकते हैं कि अज्ञेय के यहाँ प्रकृति, प्रेम, सौंदर्य, आत्मदान, मृत्यु जैसे अनुभव आते हैं तो किस प्रकार आधुनिक बोध और संवेदना का हिस्सा बन कर आते हैं।

20.5 प्रमुख कविताओं के आधार पर अज्ञेय का मूल्यांकन

छायावादोत्तर कविता में प्रयोगवाद और नयी कविता के महत्वपूर्ण कवि अज्ञेय का अध्ययन करते हुए हमने उनके काव्य-विकास, आधुनिक बोध और संवेदना, स्वाधीन चेतना और व्यक्तित्व की खोज जैसे विषयों पर विचार किया है और अज्ञेय की कविता के प्रति उत्तरोत्तर अपने को सजग बनाया है। प्रमुख कविताओं के अंश बीच-बीच में आते रहे हैं और हम उनमें अज्ञेय की विशेषताओं को ठीक-ठीक देख सके हैं। अज्ञेय की काव्य-यात्रा में से कुछ कविताओं को चुनकर अलग से हम विचार कर सकते हैं। इससे यह भी पता चलेगा कि किस तरह कविता के मर्म को पहचानें और किस तरह कविताओं का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करें।

20.5.1 'असाध्य वीणा' में अज्ञेय

आप अज्ञेय की कविताओं से कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण पाठ विश्लेषण के लिए चुनना चाहेंगे तो उनकी सबसे महत्वाकांक्षी कविता 'असाध्य वीणा' की ओर ज़रूर ध्यान जाएगा। यह एक लंबी कविता है जिसके मूल में आख्यान है। आख्यान का आधार यह संदर्भ है कि वीणा असाध्य तब तक है जब तक वह चेतन किरीटी तरू से कटी हुई है। जो अपने को कलावंत मानकर वीणा बजाना चाहता है वह असफल है। जो वीणा में किरीटी तरू की उपस्थिति मानकर उसे साधना चाहता है, बजाना चाहता है वह सफल होता है। एक तो कविता की शब्दावली पर ध्यान दें जिससे कविता एक मिथकीय परिवेश निर्मित करती है :

केश कम्बली/ वज्रकीर्ति / किरीटी तरू / वासुकि नाग / तथता / महामौन / महाशून्य / अविभाज्य / अभिमंत्रित / राजा-रानी / राजसभा

फिर कथा-विन्यास पर ध्यान दें - प्रियवंद केशकम्बी का आगमन, राजा का स्वागत, आशय-ज्ञापन, असाध्य वीणा का प्रियंवद के समक्ष रखा जाना, वीणा का इतिहास-वृत्त, किरीटी तरू से वज्रकीर्ति द्वारा निर्माण, किरीटी तरू का वर्णन, वीणा की असाध्यता का उल्लेख, सच्चे स्वर-सिद्ध की प्रतीक्षा, केशकम्बली का साधना-प्रयत्न, प्रभाव, प्रियवंद का उत्तर, प्रस्थान.....।

कविता जो मिथकीय वातावरण बनाती है उसमें देखें किरीटी तरू की ऊँचाई का वर्णन : (किरीटी तरू की व्यंजना : मुकुटधारी, वृक्षराज)

उसके कानों में हिमशिखर रहस्य कहा करते थे अपने
कंधों पर बादल सोते थे----------
जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताल-लोक
उसकी गंध प्रवण शीतलता से फण टिका नागवासुकि सोता था

देखें वीणा को संभालने-साधने का यह ढंग :

केशकम्बली गुफागेह ने खोला कम्बल।

धरती पर चुपचाप बिछाया।
वीणा उस पर रख, पलक मूँदकर, प्राण खींच
करके प्रणाम
अस्पर्श छुअन से छुए तार

वीणा का बजना क्या है जैसे वृक्ष का परिवेश उभरता हो। स्मृतियों के साथ! एक-एक झंकृति के लिए अत्यंत सतर्क बिम्ब योजना है : 'पन्थी के घोड़े की टाप अधीर / अचंचल धीर थाप भैसों के भारी खुर की /----------बटिया पर चमरौंध की रूंधी चाप सातवें के लिए / और आठवें को कुलिया की कटी मेड़ से बहते जल की छुल-छुल----------।'

प्रियवंद के लिए वीणा बजाने की प्रक्रिया में **अहं का विलयन** अनिवार्य है :

मुझे स्मरण है -
पर मुझको मैं भूल गया हूँ :

'असाध्य वीणा' में वीणावादक का विलक्षण प्रभाव कुछ ऐसा :

डूब गये सब एक साथ।
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे।

महत्वपूर्ण यह है कि अपने को भूलकर ही प्रियवंद को स्वर-सिद्धि मिली। हम अज्ञेय को पढ़ते हुए कुछ प्रयोगों की विशिष्टता पर ध्यान दें, यह आवश्यक है - जैसे :

करके प्रणाम
अस्पर्श छुअन से छुए तार

'स्पर्श' वादन-प्रक्रिया का अंग है। यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि तार 'छुए' नहीं गंए। कहा जा रहा है कि स्पर्श (तार को काटने की-सी अर्थ-ध्वनि) का प्रयत्न नहीं किया गया। जैसे, अपने आप बज उठी वीणा।

इस तरह 'असाध्य वीणा' को पढ़ते हुए हम अज्ञेय के आधुनिक भाव-बोध और संवेदना को भाषा में पूर्णतर अभिव्यक्ति पाते हुए देख सकते हैं। ये कविताएँ हर बार संपूर्ण पाठ की माँग करती हैं।

20.5.2 अन्य कविताएँ

हमारे अध्ययन के बीच कुछ कविताओं के संदर्भ संकेत उभरते रहे हैं जैसे 'यह दीप अकेला', 'नदी के द्वीप', 'कलगी बाजरे की', 'दूर्वाचल'....। कुछ कविताएँ अलग से विचारणीय हैं, जैसे - 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान', 'आज तुम शब्द न दो'। 'सम्राज्ञी का नैवेद्य दान' पर टिप्पणी है - 'जापान की सम्राज्ञी कोमियो प्राचीन राजधानी नारा के बुद्ध मंदिर में जाते समय असमंजस में पड गई थी कि चढ़ाने को क्या ले जाए। फिर रीते हाथ गयी थी।' महत्वपूर्ण है यह तर्क कि जो फूल जहाँ खिला है, वहीं खिला रहे, मैं वहीं उसे अर्पित करती हूँ। इस तर्क में ही कविता या काव्यात्मकता है। इस काव्यात्मक तर्क को इन पंक्तियों में देखें :

जो कली खिलेगी जहाँ, खिली,
जो फूल जहाँ है,
जो भी सुख
जिस भी डाली पर
हुआ पल्लवित, पुलकित,
मैं उसे वहीं पर
अक्षत, अनाघ्रात, अस्पष्ट, अनाविल,

हे महाबुद्ध।
अर्पित करती हूँ तुझे।

अज्ञेय का आत्म-सजग व्यक्तित्व 'नदी के द्वीप' जैसी कविता में कहना चाहता है कि उसे खोकर समाज के साथ सम्पृक्ति निरर्थक है। द्वीप को धारा से अलग बने रहना है। रेत नहीं होना है। कभी ज़्यादा तेज़ प्लवन हो, टूट-फूट हो तो फिर रेत में से छनकर पैर टिकाकर द्वीप में नए व्यक्तित्व का आकार बनेगा। नदी तब माँ की तरह उसे संस्कारित करेगी। कविता को एकदम शुरू से पढ़ें और द्वीप की प्रतिज्ञा से परिचित हों :

हम नदी के द्वीप हैं
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर
स्रोतस्विनी बह जाए
वह हमें आकार देती है
हमारे कोण, गलियाँ, अंतरीप, उभार, सैकत कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं
माँ है वह
है, इसी से हम बने हैं।

'आज तुम शब्द न दो' कविता काव्य-प्रक्रिया से संबंधित है। आप अज्ञेय को पढ़ते हुए बराबर अनुभव करते आए हैं जैसे कवि अपनी अभिव्यक्ति से संतुष्ट नहीं हो पाता। जैसे एकमात्र उपयुक्त शब्द या सार्थक अभिव्यक्ति की प्रतीक्षा बनी ही रहती है। जिस स्रोत से अभिव्यक्ति संभव होने वाली है, उससे कवि का एक तनाव-भरा द्वंद्वात्मक रिश्ता बना रहता है। अब इन पंक्तियों को देखें :

आज तुम शब्द न दो, न दो
कल भी मैं कहूँगा
तुम पर्वत हो अभ्रभेदी शिलाखण्डों के गरिष्ठ पुंज
चाँपे इस निर्झर को रहो, रहो
तुम्हारे रन्ध्र रन्ध्र से
तुम्हीं को रस देता हुआ
फूटकर मैं बहूंगा

'बावरा अहेरी' से

इस काव्य-प्रक्रिया की एक खास झलक हम अज्ञेय की ही कविता 'शब्द और सत्य' में देख सकते हैं। आप इस समूचे अध्ययन-क्रम में देख रहे होंगे कि अज्ञेय बार-बार 'शब्द' पर लौटते हैं। अज्ञेय शब्द और सत्य में भी तनावपूर्ण द्वंद्वात्मक संबंध ही देखते हैं। जिस 'आलोक स्फुरण' में वे मिलते हैं वहीं अभिव्यक्ति की सार्थकता है। पहले 'शब्द और सत्य' कविता को देखें :

यह नहीं कि मैंने सत्य नहीं पाया था
यह नहीं कि मुझको शब्द अचानक कभी-कभी मिलता है :
दोनों जब तक सम्मुख आते ही रहते हैं।
प्रश्न यही रहता है :
दोनों जो अपने बीच एक दीवार बनाए रहते हैं
मैं कब, कैसे, उनके अनदेखे
उसमें सेंध लगा दूँ
या भरकर विस्फोटक
उसे उड़ा दूँ?
कवि जो होंगे हों, जो कुछ करते हैं करें,
प्रयोजन मेरा बस इतना है :

ये दोनों जो
सदा एक-दूसरे से तनकर रहते हैं
कब, कैसे, किस आलोक-स्फुरण में
इन्हें मिला दूँ -
दोनों जो हैं बंधु, सखा, चिर सहचर मेरे

इस कविता को एकाधिक बार पढ़ें। इसमें वे संकेत हैं जिनके सहारे अज्ञेय की अनेक कविताएँ अपना अर्थ खोल सकेंगी। खास बात यह है कि अज्ञेय जैसा एक आत्म-सजग आधुनिक कवि जो पहले कहा जा चुका है, कविता की जो रीति बन चुकी है, उससे संतुष्ट नहीं है। सर्जनात्मकता कवि के लिए नएपन में ही सार्थक है। अधिकतर कवि सत्य को पहले से प्राप्त मानते हैं। वे सत्य को कहने के लिए शब्द को साधन के रूप में देखते हैं। यहाँ अज्ञेय तो कविता को सबसे पहले शब्द मानते हैं। वे सत्य को अन्वेषण का विषय मानते हैं और शब्द को भी। फिर मानते हैं कि दोनों एक-दूसरे के अनुरूप होकर नहीं परस्पर टकराकर नया काव्यत्व प्राप्त करते हैं। अज्ञेय का बल प्रयोगशीलता पर इसीलिए है कि कविता बार-बार नया अर्थ, नया रूप प्राप्त करना चाहती है।

20.6 सारांश

छायावादोत्तर कविता में प्रयोगवाद और नयी कविता के अग्रणी कवि के रूप में अज्ञेय का महत्व निर्विवाद है। आधुनिक भाव-बोध और संवेदना के कवि के रूप में उनकी एकदम अलग पहचान है। उनके आधुनिक बोध के मूल में है - व्यक्तित्व की खोज। व्यक्तित्व की खोज का समकक्ष है - अभिव्यक्ति की खोज। अज्ञेय के लिए काव्य-प्रक्रिया का अपना महत्व है। शब्द और सत्य में निरंतर द्वंद्व की स्थिति बनी रहती है। अज्ञेय निर्वैयक्तिक संवदेना को महत्व देते हैं। तनाव और द्वंद्व की स्थिति में ही अज्ञेय को नया काव्योन्मेष उपलब्ध हो पाता है।

अज्ञेय की प्रकृति, प्रेम, आत्मदान, मृत्यु संबंधी कविताओं में सब कुछ नयी प्रश्नशील निगाह से देखा जा रहा है। प्रकृति केवल अलंकरण तक सीमित नहीं है। प्रेम ढर्रे से अलग है। मृत्यु भय नहीं देती। वरण के लिए एक अप्रत्याशित विकल्प देती है। एक ओर अहं का विलयन अज्ञेय का ज़रूरी सरोकार है। दूसरी ओर व्यक्तित्व का तेजस् अंश बचाए रखने की चिंता अज्ञेय को सबसे अलग प्रमाणित करती है। अज्ञेय की स्वाधीन चिंता के निहितार्थ अनेक हैं।

अज्ञेय की कई कविताएँ काव्य-प्रक्रिया की ही कविताएँ हैं। उनमें अधिकतर कविताएँ अवधारणात्मक हैं जो व्यक्तित्व और सामाजिकता के द्वंद्व को, रोमांटिक आधुनिक के द्वंद्व को प्रत्यक्ष करती हैं। जिजीविषा अज्ञेय का अधिक प्रिय काव्य-मूल्य है। वह संघर्ष की सार्थकता का पर्याय है। अज्ञेय आधुनिक भावबोध के एक अत्यंत महत्वपूर्ण कवि के रूप में बराबर पढ़े जाते रहेंगे और शब्द-अर्थ का नया संबंध खोजने-पहचानने में सहायक होंगे।

20.7 प्रश्न

1. छायावादोत्तर हिंदी कविता में अज्ञेय के महत्व पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।
2. अज्ञेय के काव्य-विकास के परिप्रेक्ष्य में उनकी जीवन-दृष्टि का विश्लेषण कीजिए।
3. अज्ञेय की कविता के एक प्रमुख अभिप्राय के रूप में व्यक्तित्व की खोज को परिभाषित कीजिए।
4. 'नदी के द्वीप' कविता का विश्लेषण तथा मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 21 अज्ञेय : काव्यभाषा और काव्यशिल्प

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 प्रयोगवाद और नयी कविता : काव्यभाषा और काव्यशिल्प
  21.2.1 प्रयोगवाद और नयी कविता के संदर्भ में संप्रेषण की समस्या और काव्यभाषा
  21.2.2 प्रयोगवाद : रूपगत प्रयोग की समस्या
  21.2.3 नयी कविता : यथार्थ दृष्टि : काव्यभाषा और काव्यशिल्प
21.3 अज्ञेय की काव्यभाषा
  21.3.1 काव्यबिंब
  21.3.2 काव्य प्रतीक
  21.3.3 मिथकीयता और काव्यभाषा
  21.3.4 नया सादृश्यविधान और अन्य विशेषताएँ
21.4 काव्यशिल्प
  21.4.1 रूप और शिल्प के प्रति दृष्टिकोण
  21.4.2 प्रगीतात्मकता
  21.4.3 लम्बी कविताएँ
  21.4.4 नाटकीयता तथा अन्य रूपगत विशेषता
21.5 प्रमुख कविताएँ : काव्यभाषा और काव्यशिल्प की दृष्टि से मूल्यांकन
  21.5.1 अज्ञेय की कुछ छोटी कविताएँ : संक्षिप्तता और संगठन
  21.5.2 हल्की-फुल्की व्यंग्य कविताएँ : रूप तथा भाषायी संगठन
21.6 सारांश
21.7 प्रश्न

21.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- प्रयोगवादी कवियों के सामने आई भाषा की समस्या की प्रकृति को पहचान सकेंगे।
- अज्ञेय के काव्य में बिंबों के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।
- लंबी कविता के रूप में 'असाध्य वीणा' का विश्लेषण और मूल्यांकन कर सकेंगे।
- अज्ञेय की काव्यभाषा और काव्य शिल्प की विशेषताएँ बता सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

इकाई 20 के अंतर्गत अज्ञेय के काव्य में आधुनिक भावबोध की एक पहचान बना लेने के बाद आपके लिए अज्ञेय को पढ़ना, उनके काव्य में रुचि लेना, उनकी कविता की भाषा और शिल्प की विशेषताएँ समझना अधिक सहज जान पड़ेगा। अज्ञेय जैसे आधुनिक कवि के पाठ की एक समस्या यह होती है कि कई बार पाठक पुरानी कविता की अपनी पसंद के आधार पर या आधुनिक छायावादी कवियों पंत-प्रसाद-निराला-महादेवी की अपनी पसंद के आधार पर अज्ञेय को पढ़ना और जाँचना चाहता है। अज्ञेय की कविता की माँग यह है कि उन्हें उनके अपने बदले हुए भावबोध और शिल्प के आदर्श के अनुसार पढ़ा जाए इसीलिए हमने अज्ञेय के अंतर्विरोधों को भी उनकी विशेषताएँ मानकर पढ़ने का रास्ता सुझाया है। जैसे अज्ञेय व्यक्तित्व की खोज के कवि हैं, पर व्यक्ति या व्यक्तित्व से दूरी बनाकर। वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक के बीच का उनका द्वन्द्व अब आप पहचान रहे होंगे जिसके कारण प्रेम की कविता केवल प्रेम की कविता नहीं रह जाती, प्रकृति की कविता केवल प्रकृति की कविता नहीं रह जाती। अज्ञेय

भावुकता से बचते हैं और बौद्धिक अनुभूति के निकट अपनी काव्यसंवेदना निर्मित करते हैं। पिछली इकाई के पाठ को याद करते हुए हम अब अज्ञेय की काव्यभाषा और काव्यशिल्प पर विचार कर सकेंगे।

इस अध्ययन में हम एक तो काव्यभाषा की विशिष्टता और शिल्प की विशिष्टता को समझने का प्रयास करेंगे। दूसरे काव्यभाषा के जो संघटक तत्व हैं (जिनसे काव्यभाषा सामान्यभाषा से भिन्न काव्यभाषा बनती है) - अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, मिथक - इन्हें अज्ञेय की कविताओं में देख सकेंगे। शिल्प के अंतर्गत रूपगत समस्याएँ हमारे विश्लेषण का विषय बनेंगी। जैसे प्रतीकात्मकता और छोटी कविताएँ, नाटकीयता और लम्बी कविता। अब आप यह भी देखेंगे कि अज्ञेय वाचिक कविता (बोलकर पढ़ी जाने वाली कविता) और मुद्रित कविता (पृष्ठ पर छपी हुई कविता) में भेद करते हैं और शिल्प में छूट लेते हैं। कहीं मौन ही भाषा हो जाती है, कहीं मुद्रण चिह्न भी भाषा का काम करते हैं।

इस अध्ययन की सार्थकता यह होगी कि आप स्वयं कविता में भाषा और शिल्प की विशेषताएँ पहचानने लगें। यह समझा सकें, कि क्यों अज्ञेय भाषा पर और भाषा में शब्द पर अधिक बल देते हैं।

यहाँ भी छायावादोत्तर कविता के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना ज़रूरी होगा। हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि छायावाद ने आने वाले नये काव्य के लिए स्वयं आधार तैयार किया। निराला ने तो कविता की मुक्ति की व्यापक संभावना देखी। पंत कविता में चित्रभाषा और भाषा में निहित संगीत आदि पर बल देते रहे। छायावादी कवि अपनी अनुभूति को महत्व देते रहे और यथार्थ के भीतर भी एक विशेष भावलोक का ही निर्माण करते रहे। प्रगतिशील कवियों ने सामाजिक संघर्ष आदि को कविता के माध्यम से व्यक्त किया और कला या रूप की अधिक चिन्ता नहीं की। अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक की तरह दृश्य पर आये और काव्यभाषा और शिल्प की समस्या को प्रयोगशीलता की समस्या के रूप में देखते रहे।

अज्ञेय की काव्यभाषा और काव्यशिल्प पर विचार करने के लिए हमारा ध्यान सबसे पहले सप्तकों की भूमिकाओं की ओर जाना चाहिए। हम यहाँ कवि की कुछ स्थापनाओं को ध्यान में रखें - 'कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है - शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं। वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है।' (आत्मनेपद, पृ0 37) 'कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब इन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया.....। भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम-संकेतों से, अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से छोटे-बड़े टाइप से, सीधे या उल्टे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से - सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।' (आत्मनेपद, पृ. 37)

इस अध्ययन में हमारी दृष्टि और पद्धति इन्हीं स्थापनाओं के आधार पर बननी चाहिए। अज्ञेय का सारा बल नये प्रयोगों पर है। नयी काव्यभाषा प्रयोगशीलता में सहायक है। पहले से प्राप्त साधन भाषा में नया और बड़ा अर्थ भरने में सहायक हैं। यही चुनौती है अज्ञेय जैसे आधुनिक कवि के सामने। फिर यह कविता 'वाचिक' से अधिक 'मुद्रित' कविता है। इसलिए मुद्रण चिह्न तक भाषा का काम देने या करने लगते हैं। पहले हम व्यापक आधार पर प्रयोगवाद-नयी कविता के संदर्भ में काव्यभाषा और शिल्प की इन विशेषताओं को समझेंगे। फिर अज्ञेय की काव्यभाषा और काव्यशिल्प पर कुछ ठोस महत्वपूर्ण कविता के उदाहरणों के आधार पर विचार करेंगे। 'तीसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने नयी शिल्प-दृष्टि का महत्व स्पष्ट किया है और कहा

है - "नया कवि नयी वस्तु को ग्रहण और प्रेषित करता हुआ शिल्प के प्रति कभी उदासीन नहीं रहा है।"

इस अध्ययन की पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि हम अज्ञेय की काव्यभाषा की दुरूहता को भी जाँच सकें। यह दुरूहता कहाँ गुण है, कहाँ दोष : यह देख सकें। कहाँ यह अनिवार्य है, कहाँ अलग से आरोहण। इस प्रकार हम अज्ञेय की काव्यभाषा तथा काव्यशिल्प की विशिष्टता से भी परिचित हो सकेंगे, सीमाओं से भी।

21.2 प्रयोगवाद और नयी कविता : काव्यभाषा और काव्यशिल्प

प्रयोगवाद से पहले के आधुनिक काव्य-परिदृश्य पर विचार करते हुए हम प्रयोगवाद और नयी कविता वाले दौर की भाषा-शिल्प की विशिष्टता की ओर आयें तो अधिक सुविधा होगी। किसी समय की काव्यभाषा अचानक नयी नहीं हो जाती। पहले से नवीनता के संकेत मिलने लगते हैं। छायावाद से प्रसाद-पंत-निराला-महादेवी ने काव्यभाषा की विशिष्टता की पहचान करायी, जहाँ काव्यभाषा में लाक्षणिकता, सांकेतिकता, प्रतीक विधान पर बल था। फिर प्रगतिवादी काव्यभाषा में जनपदीय बोलचाल की भाषा काव्यभाषा बनी जो यथार्थ को सीधे सम्प्रेषित करने के लिए प्रयत्नशील थी। प्रयोगवाद में भाषा की नयी खोज, वस्तु और भाषा में नये संबंध पर बल देने का आग्रह दिखाई पड़ा।

यहाँ अज्ञेय-काव्य के एक प्रमुख आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी के इस कथन पर ध्यान दें - "प्रयोगवाद में अज्ञेय के माध्यम से काव्यभाषा का पुनर्सृजन आरंभ होता है। ------ भाषा का अधिक से अधिक सतर्क और सर्जनात्मक प्रयोग करके ही अज्ञेय ने अपनी रचना को इतना निखारा है। भाषा जितनी सर्जनात्मक होगी कलाकृति उतनी ही विशुद्ध और प्रामाणिक होगी।" (भाषा और संवेदना, रामस्वरूप चतुर्वेदी/तीसरा संस्करण/पृष्ठ 16) यहाँ आपके मन में कुछ प्रश्न उठ सकते हैं। प्रयोगवाद के सभी कवि क्या अज्ञेय की काव्यभाषा के संस्कारित मार्ग पर ही चल रहे थे या उनमें विविधताएँ भी थीं। 'तारसप्तक' में मुक्तिबोध की काव्यभाषा अज्ञेय जैसी थी या भिन्न थी? 'दूसरा सप्तक' में शमशेर की काव्यभाषा अज्ञेय जैसी थी या भिन्न थी ? रघुवीर सहाय की काव्यभाषा अज्ञेय जैसी थी या भिन्न थी? आप इसके परीक्षण में लगेंगे, तो भिन्नता स्पष्ट दिखाई देगी। प्रयोगवाद से नयी कविता की भाषा-प्रकृति भी भिन्न है - रघुवीर सहाय इसी को प्रमाणित करते हैं। यह बात उदाहरणों से भी आप समझ सकेंगे।

आपकी इकाई 20 में पढ़ी हुई कविता है 'दूर्वाचल' - अज्ञेय की एक तरह की प्रेम कविता : शुरू की पंक्तियाँ हैं : (ज़रूरी है कि आप भाषा पर ध्यान दें)

पार्श्वगिरि का नम्र, चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों-सी।
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा।
विहग-शिशु मौन नीड़ों में
मैंने आँख भर देखा।

दिया मन को दिलासा - पुनः आऊँगा।
(भले ही बरस-दिन-अनगिन युगों के बाद)

'दूसरा सप्तक' में रघुवीर सहाय की कविता है : 'भला'। उसका आरंभिक अंश देखें :

मैं कभी-कभी कमरे के कोने में जाकर
एकांत जहाँ पर होता है,
चुपके से एक पुराना कागज़ पढ़ता हूँ,

मेरे जीवन का विवरण उसमें लिखा हुआ,
वह एक पुराना प्रेम-पत्र है जो लिखकर
भेजा ही नहीं गया, जिसका पाने वाला
काफी दिन बीते गुज़र चुका

यहाँ रूप और भाषा की भिन्नता देखें। अज्ञेय के उदाहरण में प्रतीकात्मकता का-सा कसाव या संगठन है। रघुवीर सहाय में बोलचाल की भाषा की सादगी और बेपरवाह शिथिलता या ढीलापन। शब्द अज्ञेय के यहाँ भी 'दर्द' और 'दिलासा' जैसे हैं पर समूची भाषायी प्रकृति भिन्न है। कविता अलग-अलग तरह का प्रभाव बनाती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी जिस शुद्धता पर बल देते हैं उसकी चिन्ता रघुवीर सहाय को नहीं है। यह संकेत है कि प्रयोगवाद से नयी कविता तक काव्यभाषा और शिल्प के प्रति दृष्टिकोण काफी बदल जाता है।

21.2.1 प्रयोगवाद और नयी कविता के संदर्भ में संप्रेषण की समस्या और काव्यभाषा

संप्रेषण की दृष्टि से प्रयोगवाद - नयी कविता वाले दौर में काव्यभाषा के क्षेत्र में जो समस्याएँ उपस्थित होती हैं उन्हें इस प्रकार देख सकते हैं - बोलचाल की भाषा, सृजनात्मक गद्य की भाषा, कविता की भाषा। लम्बे समय से माना जाता रहा है कि एक होती है कविता की भाषा और दूसरी गद्य की भाषा। प्रयोगवाद - नयी कविता ने यह भेद मिटा दिया। अज्ञेय भी बोलचाल की भाषा का पक्ष लेते हैं और कविता में ऐसा प्रयोग भी करते हैं :

मेरा भावयंत्र?
एक मचिया है सूखी घास-फूस की
उसमें छिपेगा नहीं औघड़ तुम्हारा दान -

(आज तुम शब्द न दो)

बंधी लीक पर रेलें लादे माल
चिहुँकती और रँभाती अफराये डाँगर-सी
ठिलती चलती जाती हैं।

(औद्योगिक बस्ती)

पर ऐसे उदाहरण अज्ञेय के यहाँ अधिक नहीं हैं। संभव है प्रगतिवाद के दबाव से ही इस तरह का भाषा आग्रह अज्ञेय में कभी स्थान पा सका हो। मूलतः उनका उद्देश्य काव्यभाषा की सर्जनात्मकता को अर्जित और समृद्ध करना ही रहा है। जहाँ प्रयोगवाद - नयी कविता के कवि छायावादी काव्यभाषा को तोड़ रहे थे, वहीं बोलचाल की भाषा को काव्यभाषा का आदर्श मानकर संतुष्ट न थे। वे काव्यभाषा में नयी भंगिमायें विकसित करना चाहते थे।

आपका ध्यान यहाँ इस बात की ओर जाना चाहिए कि प्रयोगवाद का विद्रोह जड़ हो चुके उपमान प्रतीकों के प्रति था जिनमें नयी अभिव्यक्ति असंभव थी। आपकी पढ़ी हुई कविता है 'कलगी बाजरे की' - जो प्रयोगवाद की बदली हुई काव्यदृष्टि का घोषणापत्र है। इसमें कवि पुरानी काव्य-भाषा की रूढ़ियों को चुनौती देता है और नये अप्रस्तुतों, नये प्रतीकों का औचित्य सिद्ध करता है - कवि अपनी प्रेमिका को 'बाजरे की कलगी' कहता है और 'सांध्य नभ की तारिका' नहीं कहता। 'शरद के भोर की नीहार न्हाई कुंई' नहीं कहता। 'टटकी कली चम्पे की' नहीं कहता। 'वगैरह-वगैरह' कहकर वह ऐसे तथाकथित कविजनोचित उपमानों को खारिज करता है और इस नतीजे पर आता है :

ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

नये सम्प्रेषण के लिए नयी काव्यभाषा के औचित्य की इस व्याख्या को ध्यान में रखें।

21.2.2 प्रयोगवाद : रूपगत प्रयोग की समस्या

रूप या फार्म की समस्या पर विचार करते हुए पहले तो यह जान लें कि काव्यभाषा की समस्या भी एक अर्थ में काव्यशिल्प की समस्या है, रूप की समस्या है। अज्ञेय छंद को काव्यभाषा की आँख कहते हैं। रामविलास शर्मा मानते हैं कि काव्यभाषा की जो भी समस्याएँ हैं शिल्प की भी समस्याएँ हैं। प्रगीतात्मक कविता की भाषा और लम्बी कविता की नाटकीय भाषा में अन्तर होगा ही। दूसरी ओर 'असाध्यवीणा' जैसी लम्बी नाटकीय कविता में प्रगीतात्मकता का स्पर्श बना रह सकता है। सानेट अपना विन्यास भाषा के भीतर ही संभव करता है। इसे उदाहरणों से समझें। अज्ञेय की ही कविता है 'कतकी पूनो' : शुरू की पंक्तियाँ हैं :

छिटक रही है चाँदनी
मदमाती, उन्मादिनी,
कलगी-मौर सजाव ले
कास हुए हैं बावले,
पकी ज्वार से निकल शशों की जोडी गयी फलाँगती -
सन्नाटे में बाँक नदी की जगी चमक कर झाँकती।

इस गीत के छंद, गीत, प्रवाह पर ध्यान दें। जैसे एक झूमता हुआ-सा गतिमय प्रकृति-दृश्य। और हरी घास पर क्षण भर कविता का यह ठहरा-ठहरा-सा गद्यविन्यास। इसी आधार पर कहा जाता है कि गद्य ने कविता को कहीं मुक्त किया है। अनेक रूपात्मक काव्य संभावनाओं के लिए जगह बनायी है। यहाँ आप मुद्रण चिह्नों का भाषा होना भी देख सकते हैं और गद्य में कविता के शिल्प का रचाव भी देख सकते हैं :

चलो, उठें अब;
अब तक हम थे बंधु
सैर को आये -
(देखे हैं क्या कभी घास पर लोट-पोट होते सतभैये शोर मचाते?)
और रहे बैठे तो
लोग कहेंगे
धुंधले में दुबके प्रेमी बैठे हैं
वह हम हों भी
तो यह हरी घास ही जाने!

(हरी घास पर क्षण भर)

अब अज्ञेय की दृष्टि से रूप को देखें। उनके अनुसार 'छन्द के द्वारा हम साधारण बोलचाल के गद्य की लय को नियमित करते हैं।' - यहाँ 'छन्द स्वरों को स्पष्टतर करता है, भाषा की गति को धीमा करता है।' (भवन्ती, पृ.27) आप इस दृष्टि से नये ढंग के काव्यप्रयोगों की रूपगत विशिष्टता को देखें। प्रयोगवादी कवियों ने रूपगत प्रयोगों के क्षेत्र में अंग्रेज़ी की आधुनिक कविता से कम नहीं सीखा है। शमशेर ने फ्री असोसियेशन टेक्नीक (मुक्त साहचर्य शिल्प) के अपने प्रयोगों के संदर्भ में यह स्वीकार किया है, दूसरी ललित कलाओं से भी सीखा है। गिरिजाकुमार माथुर ने टेकनीक पर बल देना सहज ही स्वीकार किया है।

21.2.3 नयी कविता : यथार्थ दृष्टि : काव्यभाषा और काव्यशिल्प

प्रयोगवाद से आगे नयी कविता वाले दौर में रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह भी लिखते रहे, अज्ञेय भी। इस दौर में मूल्यगत संक्रमण सबसे बड़ी समस्या रही है। युग के यथार्थबोध ने काव्यात्मक, अकाव्यात्मक का भेद मिटा दिया। अज्ञेय विराट 'सागर' का यथार्थ थे। भाषाशिल्प की चुनौती सुलझाने के लिए काव्यगत प्रयोगशीलता का क्षेत्र विस्तृत करना पड़ा। हम केवल दो उदाहरण आमने-सामने रखकर नयी कविता वाले दौर के अज्ञेय की दो काव्यभंगिमाएँ देख सकते हैं। एक ओर क्षुब्ध जीवन-चित्र ऐसा सपाट साधारण :

चाबुक खाये
भागा जाता
सागर तीरे
मुँह लटकाये
मानो धरे लकीर
जमे खारे झागों की
रिरियाता कुत्ता यह
पूँछ लड़खड़ाती टागों के बीच दबाये।

('जीवन', कितनी नावों में कततनी बार)

दूसरा चित्र यह : एक काव्यात्मक 'उलाहना' - (यहाँ प्रतीकात्मकता केवल छंद नहीं, भाषागत विन्यास को प्रभावित करती है) :

नहीं, नहीं, नहीं।
मैंने तुम्हें आखों की ओट किया
पर क्या भुलाने को?
मैंने अपने दर्द को सहलाया
पर क्या उसे सुलाने को?
मेरा हर मर्माहित उलाहना
साक्षी हुआ कि मैंने अंत तक तुम्हें पुकारा
ओ मेरे प्यार। मैंने तुम्हें बार-बार, बार-बार असीसा
तो यों नहीं कि मैंने विछोह को कभी भी स्वीकारा।
नहीं, नहीं, नहीं।

('उलाहना', कितनी नावों में कितनी बार)

यह भेद हमें करना चाहिए कि कहाँ अज्ञेय सफल हैं, कहाँ असफल। कहाँ उनकी प्रयोगशीलता कविता की ताकत बनती है, कहाँ कमज़ोरी। यह नहीं कहा जा सकता कि स्वयं कवि अपनी भाषा प्रयोग विधि से पूरी तरह संतुष्ट रहा हो। असंतोष इसी अर्थ में महत्वपूर्ण है कि कविता में किसी नयी उपलब्धि के लिए कवि को व्यग्र बनाता है।

21.3 अज्ञेय की काव्यभाषा

अज्ञेय के संबंध में यह याद रखना ज़रूरी है कि उन्होंने अपनी काव्यभाषा विकसित करने के लिए बहुत लम्बा संघर्ष किया है। 'भग्नदूत' और 'चिन्ता' की कविताएँ काव्यभाषा की दृष्टि से अत्यंत साधारण हैं। छायावादी भावुकता का बहुत सतही रूप उनकी सीमा है पर आगे का कृतित्व क्रमशः अज्ञेय की सर्जनात्मक क्षमता को भाषा और संवेदना दोनों दृष्टियों से समृद्ध करता है। 'तारसप्तक' के दूसरे संस्करण में अज्ञेय की इस स्थापना पर ध्यान दें : "काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है।..... ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं।" इससे आप समझ सकते हैं कि अज्ञेय के लिए काव्यभाषा कविकर्म का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। काव्यभाषा की सर्जनात्मक विशिष्टता 'असाध्यवीणा' में सबसे अधिक प्रकट है। पिछली इकाई में इस कविता पर हुई चर्चा को ध्यान में रखें। याद करें, प्रियंवद के साधे जाने पर वीणा जब झंकृत होती है तो उससे जो संगीत रचा जाता है, उसका प्रभाव कैसा है :

डूब गए सब एक साथ
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे

काव्यभाषा यहाँ गहन सर्जनात्मक अनुभव बनती है। शब्द तो शब्द है, यहाँ तो अज्ञेय से हीं शब्द लेकर कहें - 'मौन भी अभिव्यंजना' है।

21.3.1 काव्य बिंब

काव्यभाषा को संगठित करने वाले उपादान के रूप में बिम्ब महत्वपूर्ण है। एक बार यह समझ लें कि बिंब इमेज शब्द के अर्थ में क्रमश: विकास हुआ है। छायावादी काव्यबिंबों से अज्ञेय के काव्यबिंबों का अन्तर समझना चाहेंगे तो हिन्दी कविता में बिम्बविधान के एक अध्येता कवि केदारनाथ सिंह का यह कथन सहायक होगा। वे कहते हैं - ''सामान्यत: बिंब शब्द का प्रयोग मूर्तिमत्ता अथवा चित्रात्मकता के अर्थ में किया जाता है। परन्तु आज की समीक्षा में उसका चित्रात्मकता वाला अर्थ गौण हो गया है और वह उन समस्त काव्यगत विशेषताओं का बोधक बन गया है जो पाठक को ऐन्द्रिय चेतना के किसी भी स्तर पर प्रभावित करती हैं।'' (आधुनिक हिन्दी कविता में बिंबविधान/पहला संस्करण/पृ.2)

अब हम अज्ञेय के संवेदनात्मक बिंब, यथार्थ बिंब, स्मृति-बिंब, संश्लिष्ट तथा विखंडित बिंब का सौन्दर्य ठीक-ठीक समझ सकते हैं। अज्ञेय के बिंबविधान में वर्ण्यस्थिति और उसके बिंब को घुले-मिले सम्पृक्त रूप में देखते हैं - जैसे पहाड़ी यात्रा का यह बिंब :

मेरे घोड़े की टाप
चौखटा जड़ती जाती है
आगे के नदी-व्योम, घाटी-पर्वत के आसपास:
मैं एक चित्र में
लिखा गया-सा आगे बढ़ता जाता हूँ

संक्षिप्तता में यह समग्र बिंब भी सहज ही ध्यान में आ सकता है :

मेरे छोटे घर-कुटीर का दिया
तुम्हारे मन्दिर के विस्तृत आँगन में
सहमा-सा रख दिया गया।

(दूज का चाँद' / 'आँगन के पार द्वार' से)

इससे भिन्न मुक्त साहचर्य पद्धति के खंडित स्मृति-बिंब की दृष्टि से उल्लेखनीय उदाहरण है अज्ञेय की कविता : 'हरी घास पर क्षण भर' :

क्षण भर अनायास
हम याद करें
चीड़ों का वन, साथ-साथ दुलकी चलते दो घोड़े,
गीली हवा नदी की, फूले नथुने,
भर्रायी सीटी स्टीमर की,
खण्डहर,
ग्रथित अंगुलियाँ,
डाकिये के पैरों की चाप....

आप यहाँ स्मृतिबिंब के बिखरे मुक्त संयोजन को देखें। जैसे स्मृति के अवचेतन में कोई एक रील चल रही हो।

21.3.2 काव्य प्रतीक

बिंब प्रतीक के संबंध को शुरू में ही समझ लें। प्रत्येक प्रतीक मूल रूप में बिंब ही होता है। तब उसमें अनेकार्थता संभव होती है। क्रमशः विकसित होते-होते वही प्रतीक के रूप में जाना जाता है और प्रायः एकार्थक लगने लगता है। बिम्ब अधिकतर उपचेतन मन की सृष्टि होता है, प्रतीक चेतन मन की। प्रतीक परम्परा के निकट जाकर समाज का जाना पहचाना विचार बन जाता है। काव्यगत प्रतीक मूर्त अमूर्त दोनों प्रकार का हो सकता है।

अज्ञेय की कविता ''नदी के द्वीप'' में ''द्वीप'' वैयक्तिकता का प्रतीक है, ''धारा'' सामाजिकता का, सामाजिक प्रवाह का। ''बावरा अहेरी'' कविता में आप सहज जान लेंगे कि ''अहेरी'' सूर्य का प्रतीक है :

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बांध लेता है सभी को साथ:
छोटी-छोटी चिड़ियाँ
मंझोले परेवे
बड़े-बड़े पंखी....

कवि प्रतीकार्थ को यहाँ तक ले जाता है : कि वही ''मन विवर'' में दुबकी ''कलौंस'' को दूर करने वाला है, भेदने वाला है। अहेरी या शिकारी है आखिर :

एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड़कर क्या तू चला जाएगा?

21.3.3 मिथकीयता और काव्यभाषा

मिथक को हम पुराणकथा या पौराणिक कल्पना से सम्बद्ध करते हैं। मिथक को भाषा का पूरक कहा गया है। अज्ञेय नमनीयता को उसका खास गुण मानते हैं। मिथकीयता वह भाषा-प्रक्रिया है जिसमें ''काल'' का अनुभव ''दिक्'' और ''दिक्'' का अनुभव ''काल'' में बदलता है। मिथकीय बिंब, मिथकीय प्रतीक इस प्रकार की कोटियाँ (categories) भी बनी हुई हैं। ''चक्रव्यूह'' एक मिथकीय प्रतीक कहा जा सकता है। ''असाध्यवीणा'' कविता में ''केशकम्बली'', ''वज्रकीर्ति'', ''किरिटी तरू'', ''वासुकि नाग'' आदि के संदर्भ मिथकीय काव्यभाषा के लिए उपयुक्त संरचना निर्मित करते हैं :

केशकम्बली गुफागेह ने खोला कम्बल।
धरती पर चुपचाप बिछाया
वीणा उस पर रख, पलक मूँदकर, प्राण खींच,
करके प्रणाम
अस्पर्श छुअन से छुए तार
x x x x
जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताल लोक
उसकी गंध प्रवण शीतलता से फण टिका नागवासुकि सोता था

21.3.4 नया सादृश्यविधान और अन्य विशेषताएँ

अज्ञेय की कविता में नया सादृश्यविधान काव्यभाषा को सर्जनात्मक वैशिष्ट्य देता है। आपने देखा है कि अज्ञेय ''कलगी बाजरे की'' कविता में घिसे-पिटे परम्परागत उपमानों की हँसी उड़ाते हैं और उन्होंने इसी तर्क में नये अनगढ़ अकाव्यात्मक उपमानों की काव्यगत सार्थकता भी स्पष्ट की है। अज्ञेय की ''नखशिख'' कविता में पैटर्न रीतिकालीन नखशिख जैसा ही है, पर प्रयुक्त उपमा नयी है और प्रभाव भी नया है :

तुम्हारी देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर से ही
स्मरण में भी गंध देती है,

सादृश्यविधान की नवीनता की दृष्टि से याद कर सकते हैं अपनी पढ़ी हुई कविता ''दूर्वाचल'' :

पार्श्व गिरि का नम्र, चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों सी।
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा।

कह सकते हैं कि अज्ञेय की काव्यभाषा की सृजनात्मकता का रहस्य किसी एक युक्ति (device) में नहीं, बल्कि भाषा की समूची विधि में निहित है जिसमें सादृश्यविधान या अलंकार विधान, बिंब प्रतीक मिथक के संयोजन की संश्लिष्टता है।

21.4 काव्यशिल्प

अज्ञेय काव्यशिल्प की सिद्धि के कवि हैं। सतर्क, सजग, दक्ष। बल प्राय: शब्द के मितव्यय और परिष्कार पर। इससे कवि की शक्ति और सीमा का एक-साथ पता चल जाता है। उनके वाक्य-विन्यास पर अंग्रेज़ी का प्रभाव भी है। तत्सम-तद्भव शब्द-प्रयोग से भाषा में कुछ ऐसा भी कर दिखाना है कि परिष्कार ही परिष्कार न दिखे। कहा गया है कि अज्ञेय में ध्वनि, शब्द, अर्थछाया, वाक्यखण्ड सबमें अंग्रेज़ी का संवेदनात्मक सूक्ष्म उपयोग देखा जा सकता है। अज्ञेय छोटी कविता लम्बी कविता में भेद नहीं करते। नहीं मानते, कि इस भेद से शिल्प की समस्या प्रभावित होती है। कई बार चुस्त सुगठित शिल्प की तुलना में उनके हल्के-फुल्केपन का अच्छा असर पड़ता है। शिल्प में कौतुकविनोद की छूट वे लेते हैं। वक्तव्य की शैली को लेकर अज्ञेय ने ''चौथा सप्तक'' की भूमिका में आपत्ति व्यक्त की है। उनका यह कथन ध्यान में रखें - ''आज की कविता बहुत बोलती है, जबकि कविता का काम बोलना है ही नहीं।'' अज्ञेय की कविता में शैली का एक-सा प्रयोग नहीं है पर यह भी नहीं कि हर शैलीगत प्रयोग पाठकों को रुचे ही।

21.4.1 रूप और शिल्प के प्रति दृष्टिकोण

अज्ञेय का काव्य-शिल्प के प्रति क्या दृष्टिकोण है - यह अलग से बहुत प्रकट नहीं है। जहाँ काव्यभाषा या काव्यशब्द के महत्व को लेकर अज्ञेय ने बहुत लिखा है, शिल्प को लेकर उतना नहीं कहा है। वे मानते हैं कि आधुनिक कविता सीधी चेतना को छूना चाहती है, इसलिए निरे शब्दों के निरे अर्थों से आगे जाकर वह ध्वनियों, अंतर्ध्वनियों, स्वरों और अन्तःस्वरों से उलझती है। उनके अनुसार वह एक साथ दो विरोधी दिशाओं में चलती है - एक तरफ छंद के बन्धन को तोड़ती है दूसरी तरफ वह संगीत यानी गेयतत्व को अधिक अपनाना चाहती है।

21.4.2 प्रगीतात्मकता

जैसे हम पहले देख चुके हैं कि अज्ञेय के यहाँ गीत भी हैं, गीत के ढाँचे के बिना भी लय या संगीत का रचाव है और ''असाध्यवीणा'' जैसी लम्बी कविताओं में भी प्रगीततत्व का उपयोग है। यहाँ कुछ उदाहरण भर देखें।

अज्ञेय के यहाँ सीधा सरल गीत भी कोई विशिष्टता लिये हुए है। क्या है वह? इसे आप स्वयं पहचानें। औसत गीत से क्या भिन्नता है यहाँ?

पूर्णिमा की चाँदनी
सोने नहीं देती।
निशा के उर में बसे आलोक-सी है व्यथा व्यापी -
प्यार में अभिमान की पर कसक ही
रोने नहीं देती।

गीत-टेक जैसी पंक्ति की लघुता और फिर लम्बा वाक्यविधान। इस पर ध्यान दीजिए। दूसरी ओर ''असाध्य वीणा'' में निहित प्रगीतात्मकता : अलग-अलग स्थलों में और सम्पूर्ण रचाव में :

तू उतर बीन के तारों में
अपने से गा
अपने को गा
तू गा तू गा
तू सन्निधि पा - तू खो।

21.4.3 लम्बी कविताएँ

''असाध्य वीणा'' की चर्चा हम कई दृष्टियों से करते रहे हैं। एक अन्य लम्बी कविता है ''ओ नि:संग ममेतर''। ग्यारह खण्डों की यह लम्बी कविता आंतरिक लय, वही अन्तःसंबंध संभाले हुए है, जो ''असाध्य वीणा'' की विशेषता है। तनाव नहीं। संतुलन। वही प्रगीतात्मकता का-सा रचावः

वर्षा जिसे धोती है, शरद सँजोता है,
अगहन पकाता और फागुन लहराता
और चैत काट, बाँध, रौंद, भरकर ले जाता है -
नैतिक चंक्रमण सारा -
पर दूर क्यों,
मैं ही जो साँस लेता हूँ
जो हवा पीता हूँ -
उसमें हर बार हर बार
अविराम अक्लान्त, अनाप्यायित
तुम्हें जीता हूँ।

अब अज्ञेय की इस सीमा पर ध्यान दें। उनकी लम्बी कविताएँ भी प्रगीतात्मक हैं। एक अमरीकी आलोचक आइवर विंटर्स का कहना है - छोटी कविताएँ प्रगीतात्मक होती हैं, लम्बी कविताएँ नाटकीय। अज्ञेय की लम्बी कविताएँ प्रगीतात्मक हैं। यह बहुतों की दृष्टि में अज्ञेय की सीमा है। नामवर सिंह इसे वस्तुत: अज्ञेय के भावबोध की सीमा मानते हैं। उनकी दृष्टि में जहाँ नाटकीयता और तनाव संरचना में है वही लम्बी कविताएँ अधिक सफल कही जा सकती हैं। इस तरह देखें तो प्रसाद की लम्बी कविता ''प्रलय की छाया'' में तनाव है, ''राम की शक्तिपूजा'' और ''अंधेरे में'' कविताओं में भी नाटकीय तनाव है। इस संबंध में अज्ञेय अपनी कवि-प्रकृति की सीमा बताते हुए सहज स्पष्टीकरण देते हैं - ''लम्बी कविताएँ भी होती हैं, हो सकती हैं। पर उनको कलात्मक एकता और गठन देने वाली चीज़ फिर दूसरी हो जाती है - भाव की संहति और तीव्रता नहीं। वह ढंग दूसरा है, और कहूँ कि मेरा वह नहीं है।''

21.4.4 नाटकीयता तथा अन्य रूपगत विशेषताएँ

अज्ञेय की कविता में नाटकीयता है तो बहुत सीमित रूप में। वह अधिक से अधिक कथन की भंगिमा है। ''असाध्यवीणा'' में नाटकीय तनाव की तीव्रता न हो, नाटकीयता तो है ही। आप दृश्य पर प्रियवंद का आना, उनका संकोच, वीणा को साधना-सँभालना देखते हैं। फिर वीणा की झंकृति। सभा का मौन। वह विलक्षण सन्नाटा। सबका तिरना एक साथ। पार जाना अलग-अलग। कथा की मंद मंथरगति के बावजूद नाटकीयता पूरे संयोजन में है। इसके अतिरिक्त अज्ञेय की अपेक्षाकृत छोटे आकार की कविताओं में आत्मकथन या सम्बोधन की भंगिमाएँ नाटकीयता लिये हुए हैं। ''बना दे चितेरे'', ''उधार'', ''चिड़िया ने ही कहा'' में ये भंगिमाएँ एक साथ भाषा की, रूप की विशिष्टता सूचित करती हैं। आप इनके कुछ उदाहरण देखें :

क) बना दे चितेरे,
मेरे लिए एक चित्र बना दे।
पहले सागर आँक :
हाँ पहले आँक :
सागर आँक कर फिर आँक उछली हुई मछली :

उपर अधर में
जहाँ ऊपर भी अगाध नीलिमा है
उछली हुई मछली
जिसकी मरोड़ी हुई देहवल्ली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।

(''बना दे चितेरे'' से)

ख) सबेरे उठा तो धूप खिलकर छा गयी थी
और एक चिड़िया अभी-अभी गा गयी थी।
मैंने धूप से कहा : मुझे थोड़ी गरमाई दोगी उधार?
चिड़िया से कहा : थोड़ी मिठास उधार दोगी?
मैंने घास की पत्ती से पूछा . तनिक हरियाली दोगी -
तिनके की नोक-भर?

(''उधार'' से)

ग) मैंने कहा
कि ''चिड़िया'' :
मैं देखता रहा -
चिड़िया चिड़िया ही रही।

फिर जाने कब -
मैंने देखा नहीं :
भूल गया था मैं क्षण भर को तकना।

('चिड़िया ने ही कहा')

उदाहरण **क** में गति और स्थिरता के द्वन्द्व में चित्रात्मकता, **ख** में कोमल आत्मीय संवाद, **ग** में विस्मय ये सब प्रयोग अज्ञेय के शिल्पकौशल का आभास देते हैं।

अज्ञेय की हाइकू शैली (जापानी शैली) की कविताएँ अनुवाद-संस्कार से संभव हुई हैं पर वे कवि की सहज प्रकृति का भी परिचय देती हैं - ''धूप'' इस शैली की एक रचना है :

सूप-सूप भर
धूप - कनक
यह सूने नभ में गयी बिखर :
चौंधाया
बीन रहा है
उसे अकेला एक कुरर

इन उदाहरणों से आप अज्ञेय के काव्यशिल्प की विशेषताओं के बारे में एक स्पष्ट धारणा बना सकेंगे।

21.5 प्रमुख कविताएँ : काव्यभाषा और काव्यशिल्प की दृष्टि से मूल्यांकन

यहाँ हम कुछ अन्य कविताओं के आधार पर एक बार फिर अज्ञेय की काव्यभाषा और काव्यशिल्प की विशेषताओं को समझने का प्रयत्न कर सकते हैं। अज्ञेय की लम्बी यात्रा से कुछ कविताओं को चुन पाना कठिन है। कभी-कभी अल्पचर्चित कविताएँ अज्ञेय की काव्यभाषा और शिल्प की विशेषता से अधिक परिचित कराती हैं।

अज्ञेय की काव्यभाषा में जो निखार आया है वह स्वीकृत परिपाटी से हटने के कारण। कभी तत्सम शब्दों के बीच ठेठ देशज शब्दों को रखकर अज्ञेय एक नयी विशेषता पैदा करते हैं।

अज्ञेय के आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी मानते हैं कि अज्ञेय के लिए भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, अपने से एक नया साक्षात्कार है। नयी काव्यभाषा के कारण हम यथार्थ को अधिक नये रूप में जानने लगते हैं।

21.5.1 अज्ञेय की कुछ छोटी कविताएँ : संक्षिप्तता और संगठन

हमने पहले भी ''दूर्वाचल'' जैसी छोटी कविता के संगठन पर विचार किया है। हम आपके अपने आस्वाद विश्लेषण के अभ्यास के लिए दो छोटी कविताएँ यहाँ पुनः दे रहे हैं :

क)

ओ एक ही कली की
मेरे साथ प्रारब्ध-सी लिपटी हुई
दूसरी, चम्पई पंखुड़ी।
हमारे खिलते-न-खिलते सुगंध तो
हमारे बीच में से होती
उड़ जाएगी।

ख)

चुप-चाप चुप-चाप
झरने का स्वर
हममें भर जाय,
चुप-चाप चुप-चाप
शरद की चाँदनी
झील की लहरों पर तिर आय,
चुप-चाप चुप-चाप
जीवन का रहस्य
जो कहा न जाय, हमारी
ठहरी आँखों में गहराय,
चुप-चाप चुप-चाप
हम पुलकित विराट में डूबें
पर विराट् हम में मिल जाय -
चुप-चाप चुप-चाप।

पहली कविता **क** प्रणय की अनुभूति की कविता है। राग संबंध की प्रगाढ़ता का बिंब है। ''प्रारब्ध'' संकेत है कि संबंध क्षण भर का नहीं, जीवनपर्यन्त बना रहने वाला है। ''दूसरी, चंपई पंखुड़ी'' कली से अभिन्न है। सौन्दर्य कोमलता में अद्वितीय। पर भूलना कठिन है कि खिलते-न-खिलते गंध तो शेष नहीं रह जाएगी। होने में, संयुक्त होने में क्षति का अहसास। दूसरी कविता **ख** में प्रकृति से और प्रकृति में व्याप्त विराट सत्ता में घुल-मिल जाने का चित्र है। भाषा भंगिमा की दृष्टि से इन प्रयोगों पर ध्यान दें - ''भर जाय''/तिर जाय/गहराय/ - और अंत में ''चुप-चाप चुप-चाप''। पाठ की विशिष्टता। वाचिक का काव्यगुण। मुद्रणचिह्न से ही इस गुण को पहचान पा रहे हैं - पर ध्वनि ऐसी, कि बोलकर ही इसका वैशिष्ट्य जानेंगे।

21.5.2 हल्की-फुल्की, व्यंग्य-कविताएँ : रूप तथा भाषायी संगठन

अज्ञेय में अभिजात्य की गरिमा सब स्वीकार करते हैं। इस ओर कम ही ध्यान जाता है कि अज्ञेय ने व्यंग्यविनोद की हल्की-फुल्की कविताएँ भी लिखी हैं। इनमें कवि की यथार्थ के प्रति तीखी प्रतिक्रिया भी देख सकते हैं। एक कवि के समग्र अध्ययन में भाषा की इस क्रीड़ावृत्ति पर भी ध्यान जाना चाहिए :

जाट रे जाट
तेरे सिर पर खाट
परजातंतर की

देस रे देस
तेरे सिर पर कोल्हू
इसका भार तू कैसे ढोयेगा
जिसे पेरेंगे जाट बाहम्न बनिया तेली खत्री

आप ही देखें कि यह भाषा यह ढंग अज्ञेय केवल स्वाद बदलने के लिए अपनाते हैं या उनके भीतर ऐसा विक्षोभ भी व्याप्त था जिसे कहना उनकी सहज प्रकृति या शैली के अनुरूप न था।

अंत में एक बार और याद कर लें - ''दूसरासप्तक'' के सम्पादकीय में अज्ञेय ने लिखा था : 'लेकिन जैसे-जैसे बाह्य वास्तविकता बदलती है - वैसे-वैसे हमारे उससे रागात्मक संबंध जोड़ने की प्रणालियाँ भी बदलती हैं - और अगर नहीं बदलतीं तो उस बाह्य वास्तविकता से हमारा संबंध टूट जाता है।' अज्ञेय आत्मबोध के ही कवि नहीं हैं, यथार्थ के नये अनुभवों को जब-तब भाषा में प्रत्यक्ष करने वाले कवि भी हैं।

21.6 सारांश

अज्ञेय आधुनिक भावबोध के ऐसे कवि हैं जिन्होंने काव्यभाषा और काव्यशिल्प की दृष्टि से खड़ी बोली की हिन्दी कविता को नयी समृद्धि दी है। उन्होंने छायावादी संस्कारों के प्रभाव से मुक्त होने में वह नयी काव्यभाषा अर्जित की जिससे प्रयोगवाद और आगे नयी कविता की पहचान बनी। रोमांटिक-आधुनिक के बीच, वैयक्तिक-निर्वैयक्तिक के बीच, शब्द और सत्य के बीच अज्ञेय जो द्वन्द्व अनुभव करते हैं उसी से उनकी महत्वपूर्ण कविताएँ दूर्वाचल, नदी के द्वीप, यह द्वीप अकेला, बावरा अहेरी, बना दे चितेरे, असाध्यवीणा संभव हुई हैं। अज्ञेय की आत्मचेतना बिंब, प्रतीक, मिथक, नये सादृश्यविधान के साथ एक विशेष संबंध बनाती है जिससे आदर्श काव्यभाषा और शिल्प का संगठन संभव होता है। काव्यभाषा की नयी खोज कवि के लिए एक नया साक्षात्कार या आत्मसाक्षात्कार है और परम्परागत काव्यभाषा के लिए चुनौती है। उसके प्रति सार्थक प्रतिरोध है। अज्ञेय की नयी काव्यभाषा आकस्मिक घटना नहीं है। उसके पीछे लंबा संघर्ष है। अज्ञेय अपने परिचित अभ्यस्त मार्ग पर चलकर ही अपना काव्यशिल्प विकसित करते हैं। उनकी छोटी कविताएँ कभी अवधारणात्मक है कभी प्रगीतात्मक। उनकी लम्बी कविताएँ नाटकीय भी हैं और प्रगीतात्मक भी। उनमें नाटकीय तनाव वैसा नहीं है जैसा ''राम की शक्तिपूजा'' (निराला) और ''अंधेरे में'' (मुक्तिबोध) की संरचना में दिखाई देता है। पर ''असाध्यवीणा'' में नाटकीय तत्व मौजूद हैं। कुछ अन्य लम्बी कविताओं में भी। अज्ञेय की काव्यभाषा और काव्यशिल्प के पीछे एक लम्बा संघर्ष है।

21.7 प्रश्न

1. प्रयोगवाद में भाषा की समस्या कवि के लिए क्यों महत्वपूर्ण है?
2. अज्ञेय के काव्यबिम्बों का वैशिष्ट्य स्पष्ट कीजिए।
3. लंबी कविता के रूप में 'असाध्य वीणा' का विश्लेषण तथा मूल्यांकन कीजिए।
4. अर्थ की सघनता और भाषागत संगठन या कसाव की दृष्टि से अज्ञेय की किसी एक छोटी कविता का विश्लेषण तथा मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 22 शमशेर काव्य की विचार-भूमि

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 शमशेर काव्य की विचार-भूमि
  22.2.1 लिविंग प्रिंसिपल की खोज
  22.2.2 मार्क्सवाद : व्यक्तित्व निर्माण की आधारभूत सामग्री के रूप में
  22.2.3 विवेक और भावबोध का द्वंद्व
  22.2.4 उर्दू कविता (ग़ज़ल) और शमशेर
  22.2.5 आत्म-सत्य बनाम समाज-सत्य
  22.2.6 सामाजिकता और यथार्थवाद
  22.2.7 कला और सामाजिक दायित्व
  22.2.8 अवसाद और अकेलेपन की भावना
22.3 सारांश
22.4 प्रश्न

22.0 उद्देश्य

शमशेर पर आधारित इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- शमशेर काव्य की विचार-भूमि के बारे में जान सकेंगे जिसमें जीवन और कला के बारे में शमशेर का नज़रिया, मान्यताएँ, रचनाकार व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक विचार-, प्रणालियाँ, तथा इन सबके संदर्भ में उनका आत्मसंघर्ष भी स्पष्ट होगा।
- इस इकाई के अध्ययन से शमशेर की कविता को जानने-समझने के बारे में जो प्रयास हुए हैं, उनपर आरोपों-प्रत्यारोपों का जो सिलसिला चला है, उसकी जानकारी भी आपको मिलेगी।
- शमशेर काव्य की इस वैचारिक पृष्ठभूमि से आप शमशेर के काव्य को समझने की दिशा में प्रवृत्त भी हो सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

शमशेर बहादुर सिंह आधुनिक दौर के सबसे जटिल कवि माने जाते हैं। यह सच है कि उनकी काव्य-संवेदना सरल नहीं है, लेकिन कविता के पाठकों के बीच शमशेर के दुरूह माने जाने के पीछे कुछ कारण रहे हैं। आम तौर पर हम किसी रचनाकार को पढ़ते समय पहले उसका विचार जानने की कोशिश करते हैं। अगर इस विचार के बारे में हमें किसी भी तरह कुछ पता चल जाता है, तो उसी के साँचे में उसकी सारी रचनाओं को बैठाकर देखने लगते हैं। उदाहरण के लिए, रामधारी सिंह दिनकर के विषय में प्रचलित मान्यता है कि वे उग्र राष्ट्रवादी विचारों के थे। उनकी अनेक कविताएँ इसकी पुष्टि करती हैं। उसी प्रकार यह कहा जाता है कि 'नए पत्ते' के दौर के 'निराला' साम्यवादी विचारों से प्रभावित हैं, नागार्जुन प्रगतिशील हैं, अज्ञेय रहस्यवादी हैं, राजकमल चौधरी अराजकतावादी हैं, इत्यादि। किंतु कवियों के साथ इस प्रकार के विशेषण एक सीमा तक ही कवि-संसार में प्रवेश करने में पाठक के लिए सहायक होते हैं। प्रायः तो यह देखा गया है कि इस प्रकार के विशेषण कवि के संपूर्ण कर्म को समझने के रास्ते में बाधक बन जाते हैं। सुसंगत विचार या विचारधारा खोजने में विश्वास रखने वालों की परेशानी तब और बढ़ जाती है जब लेखक अपनी टिप्पणियों, निबंधों और वक्तव्यों में जिन विचारों का समर्थन करता हुआ, जिनका प्रचार करता हुआ दिखलाई पड़ता है, उसकी कविताएँ कहीं भी उनके मेल में

पड़ती नहीं दीखतीं। इसके चलते उलझन में पड़ा हुआ पाठक-आलोचक कवि में अंतर्विरोधों के दर्शन करने लगता है और फिर इन अंतर्विरोधों की सामाजिक-आर्थिक, मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है। किसी कवि को पढ़ने-समझने और उससे आत्मीयता स्थापित करने के मार्ग में इस प्रकार की व्याख्याओं से दिशा-भ्रम के अलावा और कुछ नहीं होता। शमशेर बहादुर सिंह को पढ़ते समय इस दिशा में और भी सतर्कता ज़रूरी है।

शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं को लेकर अच्छे-भले रसज्ञ शिकायत करते पाए जाते हैं कि इनका पूरा आनंद उठाने में उन्हें दिक्कत पेश आती है। शमशेर ने 1949 में जब अपना पहला कविता-संग्रह 'उदिता' तैयार किया (जो उस साल छप न सका) तो उसकी भूमिका में इस परेशानी का ज़िक्र यों किया - 'बाज मेरे दोस्तों को मेरी कुछ रचनाओं से लुत्फ उठाने में दिक्कत महसूस हुई है, जहाँ मैं समझता हूँ कि न होनी चाहिए थी या जितनी हुई उससे बहुत कम होनी चाहिए थी।' अपनी कविताओं को लेकर वे इतने आश्वस्त क्यों हैं? वे आगे बताते हैं- '.....जब ये रचनाएँ लिखी गईं, उस वक्त मुझे किसी पाठक की दिक्कत का ख्याल नहीं था.....सिवाय अपने उस पाठक के, जिसके सामने मैंने अपनी बातों को खास अपने लहजे में, खास अपने मन के रंग में, अपनी लय, अपने सुर में, खोलकर, एक ख़ाब की तरह, एक उलझी हुई याद के बहुत अपने छायाचित्र की तरह, रखने की कोशिश की है।' तात्पर्य यह कि शमशेर अत्यंत ही निजी-भाव की कविताएँ लिख रहे थे। उनका कवितारंभ हिंदी में छायावादी स्वर के उत्कर्ष में हुआ। छायावाद की श्रेष्ठतम रचनाएँ लिखी जा चुकी थीं और स्वयं उसके स्थपतियों को अब कविता के नए रूपाकार की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। इसी समय, छायावाद का गहरा रंग लिए लेकिन भावों और वाणी में सरलता के उद्दाम आवेग का एक रेला भी आया, जिसे बाद में सुविधा के लिए 'उत्तर छायावादी काव्य' कहा गया। दरअसल यह स्वच्छंदतावाद की ही एक धारा थी। शमशेर की आरंभिक कविताओं की पृष्ठभूमि छायावादी और उत्तर-छायावादी काव्य-संस्कारों से निर्मित हुई। लेकिन उनकी एकांत-प्रियता और विशिष्ट निजीपन ने उनकी कविताओं को नितांत भिन्न स्वर और रूप प्रदान किया। इसलिए आरंभिक दौर से लेकर तो बाद तक के शमशेर को पढ़ते समय इस बात के प्रति सावधान रहना भी आवश्यक है कि उन्हें किसी एक काव्य-धारणा के लक्षणों के आधार पर समझने की कोशिश न की जाए। दूसरी गड़बड़ी, जो प्रायः शमशेर की कविताओं के साथ हुई है और जिसकी ओर आलोचक नंदकिशोर नवल ने इशारा किया है, वह है उनमें नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की तरह 'ठोस अर्थ की खोज' करना, जबकि उनके अनुसार शमशेर ने 'अर्थ को ज्यादा से ज्यादा छोड़कर कविता लिखी है।' डॉ. नवल का मत है कि शमशेर ने 'अर्थ को अधिक से अधिक छोड़कर कविता लिखी और उसमें वह जादू भर दिया, जो अधिक से अधिक मानवीय है और अधिक से अधिक कविता का जादू।' दिक्कत सिर्फ यह है, जैसा कि ऊपर भी कहा गया है कि उन्हें 'प्रायः कलावाद, रूपवाद, अतियथार्थवाद और प्रभाववाद के द्वारा समझने-समझाने की कोशिश की गई है, जिससे उनकी दुरूहता घटने के बदले बढ़ती ही चली गई है।'

अशोक वाजपेयी ने इसी बात को शमशेर की कविताओं के एक संचयन 'टूटी हुई बिखरी हुई' की भूमिका में इस प्रकार कहा है - शमशेर की कविताओं का 'आप किसी अन्य अभिप्राय के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकते। वह अपने आत्यंतिक अर्थ में परम नैतिक कविता है, प्रार्थना की तरह पवित्र...।' शमशेर की संपूर्ण काव्य-साधना के आशय को अशोक वाजपेयी इस प्रकार व्यक्त करते हैं - 'उनकी दुनिया 'टूटी हुई बिखरी हुई' है, पर अपनी सुंदरता और अर्थमयता में मुकम्मल। उसमें टूटे-बिखरे हुए से ही सजग, पर सहज, संयमित, पर तनाव-भरी मानवीयता सहेजने और हम तक पहुँचाने की संकोच और संदेह भरी चेष्टा है।'

शमशेर की कविताओं को पढ़ने के पहले वैसी रूढ़ियों से मुक्ति आवश्यक है जो तथाकथित काव्य-आंदोलनों ने बना रखी हैं। इसलिए उनके काव्य-लोक में प्रवेश के लिए और उस संसार की सदस्यता प्राप्त करने के लिए किसी भी पाठक को शमशेर के मनोजगत, विचार के प्रति उनके दृष्टिकोण, संसार के प्रति उनकी दृष्टि तथा कविता के उनके व्यवहार को सावधानी से समझना ज़रूरी होगा। प्रायः हिंदी आलोचना ने यह दायित्व अब तक पूरा नहीं किया है,

हालांकि शमशेर की श्रेष्ठता को सीधे-सीधे अस्वीकार करने का दुस्साहस भी एकाध को छोड़कर शायद ही किसी ने दिखाया हो। इसलिए हम शमशेर को पढ़ने का रास्ता उन्हीं की उंगली पकड़कर तय करेंगे और उस दरम्यान यह भी देखेंगे कि इस रास्ते से कई सुधी समीक्षक कैसे और क्यों भटक गए हैं।

22.2 शमशेर काव्य की विचार-भूमि

22.2.1 लिविंग प्रिंसिपल की खोज

कोई रचनाकार या कलाकार शमशेर बहादुर सिंह के लिए आकर्षक इसलिए होता है कि वह कोई ऐसी चीज़ पैदा कर रहा होता है जिससे हम जाने-अनजाने अपनी अनुभूतियों या अपने अनुभवों की तुलना करते चलते हैं। ऐसे कलाकार को समझने के अपने तरीके के बारे में उनका कहना है, 'चूँकि मेरी दिलचस्पी शैली और प्रकार में और तकनीक में रही है, तो अलग-अलग रचनाकारों की, कवियों की, आर्टिस्टों की जो शैलियाँ हैं उनमें भी रही है।.....मैं डिसकवर करना चाहता हूँ कि इस रचनाकार का जो एक लिविंग प्रिंसिपल है वह क्या है।' यह उद्धरण खुद शमशेर को समझने के लिहाज़ से काफी महत्वपूर्ण और अर्थपूर्ण भी है। अक्सर रचनाकारों की विश्व-दृष्टि या विचारधारा की खोज की जाती है। इस विश्व-दृष्टि या विचारधारा की जगह शमशेर रचनाकार के 'लिविंग प्रिंसिपल' को खोजने-समझने की ज़रूरत बताते हैं, जो यह एक सही रवैया लगता है।

रघुवीर सहाय को शमशेर ने ज़िंदगी में जिन तीन चीज़ों की 'बड़ी ज़रूरत' बताई थी, उनमें एक था - मार्क्सवाद। एक इंटरव्यू में मार्क्सवाद से अपने रिश्ते को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि मार्क्सवाद से नज़रिया बेहतर, वैज्ञानिक और विश्वसनीय होने के साथ-साथ दृष्टि में विस्तार मिलता है और विश्व-बंधुता का अहसास भी होता है। मार्क्सवाद से रचनाकार को दिशा मिलती है और उसकी वेदना में धार आ पाती है। लेकिन इसी मार्क्सवाद से शमशेर का रिश्ता हिंदी के आलोचकों के लिए खासा सिरदर्द बना रहा है। प्रायः सबने अपनी मुश्किल किसी न किसी ढंग से बताई है और अपने-अपने हिसाब से उसका समाधान भी किया है, लेकिन उनकी चर्चा के पहले शमशेर की आरंभिक कविताओं के संकलन 'उदिता' की भूमिका की ये पंक्तियाँ पठनीय हैं - '.....अगर मेरी वाणी में इन्सान का दर्द है - छोटा सा दर्द सही, मगर सच्चा दर्द.....भावुकता, ललक, आकांक्षा, तड़प और आशा, कभी घोर रूप में निराशा भी लिए हुए, कभी उदासी, कभी-कभी उल्लास भी.....एक प्रेमी कलाकार, एक मध्यवर्गीय भावुक नागरिक का, जो मार्क्सवाद से रोशनी भी ले रहा है और सांस्कृतिक और धार्मिक विविध परंपराओं में अपनी नैसर्गिक शक्ति और ऊर्जा के स्रोत भी (अपनी सीमा में अपनी शक्ति भर) तलाश रहा है, एक ऐसा व्यक्ति जिसको सभी देशों और साहित्यों से प्यार है और सबसे अपने दिल को जोड़ता है (प्रेम की भावुकता ने जो बीज बोया वह मैं देखता हूँ कि अकारथ नहीं गयाः क्योंकि पूरी मनुष्य जाति से प्रेम, युद्ध से नफरत और शांति की समस्याओं से दिलचस्पी - ये सब बातें उसी से धीरे-धीरे मेरे अंदर पैदा हुईं.....) तो, अगर उपर्युक्त तमाम सूत्रों के साथ इन्सान से जुड़ता हुँ, तो मेरे लिए फिलहाल इतना काफी है।' यहाँ चिह्नित करने लायक शब्द हैं - 'सभी देशों और साहित्यों से प्यार', 'प्रेम की भावुकता', 'पूरी मनुष्य जाति से प्रेम, युद्ध से नफरत और शांति की समस्याओं से दिलचस्पी' और फिर इन सभी सूत्रों के साथ इन्सान से जुड़ने की कोशिश। ये कुछ ऐसे सूत्र हैं, जिनके माध्यम से शमशेर को समझा जा सकता है।

सबसे अधिक दिलचस्प है 'प्रेम की भावुकता' को गौरव का स्थान दिया जाना। यह इसलिए कि आज भी मार्क्सवादी विचारक और रचनाकार अगर प्रेम को सम्मान देने को तैयार हो भी जाएँ, तो भावुकता को श्रेयस्कर मानने में उन्हें हिचकिचाहट बनी रहेगी। कम्युनिस्टों का प्रशिक्षण ही कुछ ऐसा होता है कि भावुक होने को वे कमज़ोर होने की निशानी मानते हैं। शमशेर भावुकता को वस्तुपरकता के साथ शत्रुतापूर्ण रिश्ते में नहीं रखते। प्रायः यह समझा जाता रहा है कि ठंडी वस्तुपरक दृष्टि अपनाने के लिए भावुकता से दूर रहना बहुत ज़रूरी है।

ऐसी धारणा वाले शमशेर को दुर्बल भावुक समझते रहे हैं। लेकिन उन्हें 1844 की आर्थिक और दार्शनिक पांडुलिपियों में मार्क्स के इस वाक्य को ध्यान से पढ़ना चाहिए : The dominion of the objective being in me, the sensuous outbrust of my life-activity, is passion, which thus becomes here the activity of my being.

न प्रेम सीमित है, न ही उनकी भावुकता का दायरा तंग है। वे उन्हें क्रिस्टोफर काडवेल की तरह ही ग्रहण करते हैं, जिन्होंने 'प्रेम' शीर्षक अपने निबंध में लिखा है कि 'सामाजिक संबंधों में विद्यमान भावात्मक तत्व को मनुष्य ने 'प्रेम' का नाम दे दिया है।' मार्क्सवादियों का विरोध पूँजीवाद से दरअसल इस वजह से होना चाहिए कि वह तमाम सामाजिक संबंधों को आर्थिक संबंधों में और उन्हें भी बाज़ार द्वारा तय किए गए संबंधों में बदलते हुए इस भावात्मक तत्व को जला डालता है। काडवेल इस व्यवस्था के बारे में लिखते हैं, 'आज मानो प्रेम और आर्थिक संबंध दो विपरीत ध्रुवों पर जमा हो गए हैं।.....विलगाव एक भयंकर तनाव को जन्म देता है और यही बूर्जुआ समाज में व्यापक परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ कर देता है।' इसी निबंध में उन्होंने प्रेम को All the unused tenderness of man's instincts कहा है। भावना, जिसे जबर्दस्ती ज़मीन के अंदर गाड़ दिया गया है, जब विस्फोट के साथ बाहर आती है तो समाज का पूरा ढाँचा चकनाचूर हो जाता है। यही क्रांति है। शमशेर इसी क्रांति के मुरीद हैं। इसीलिए प्रेम की भावुकता उन्हें कमज़ोर करने की जगह इन्सानों के साथ सही रिश्ते कायम करने में मदद करती है।

22.2.2 मार्क्सवाद : व्यक्तित्व निर्माण की आधारभूत सामग्री के रूप में

अज्ञेय ने शमशेर के बारे में कहा है, 'शमशेर की कविता में निहित मूल्य-दृष्टि में और उनकी घोषित राजनीति में, राजनीतिक दृष्टि में, लगातार एक विरोध रहा है और अभी तक है।' यह घोषित राजनीतिक दृष्टि मार्क्सवाद के अलावा और कुछ नहीं। पर इस संबंध में स्वयं कवि का विचार यह है - 'मार्क्सवाद को मैं सामाजिक, राजनैतिक पहलुओं से नहीं देखता, बल्कि हमारे युग में वह मानव के गहनतम चिंतनों से जुड़ा है।' अतः मार्क्सवाद उनके लिए राजनीतिक दृष्टि-मात्र न होकर उनके रचनाकार व्यक्तित्व के निर्माण की आधारभूत सामग्री है। 'दूसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा है कि यह कलाकार पर निर्भर करता है कि वह अपने चारों ओर बिखरे पड़े सुंदरता के खजाने का कितना इस्तेमाल कर सकता है। लेकिन कलाकार में यह क्षमता आए, इसके लिए ज़रूरी है कि वह अपने चारों तरफ की ज़िंदगी में दिलचस्पी ले, उसे ठीक-ठाक, यानी वैज्ञानिक आधार पर समझे। शमशेर के लिए यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है। मार्क्सवाद उन्हें अपनी अनुभूतियों और अनुभवों को सुलझाने में, उन्हें स्पष्ट करने में मदद करता है, जिससे उनकी 'कला-चेतना' जग पाती है। इसी वक्तव्य में वे आगे लिखते हैं, 'इस तरह अपनी कला-चेतना को जगाना और उसकी मदद से जीवन की सच्चाई और सौंदर्य को अपनी कला में सजीव से सजीव रूप देते जाना : इसी को मैं साधना समझता हूँ। और इसी में कलाकार का संघर्ष छिपा हुआ देखता हूँ।' इस तरह, यह देखना कठिन नहीं है कि शमशेर के प्रशंसकों ने उनकी कवि-दृष्टि या कला-चेतना और मार्क्सवाद में जो भेद देखा था, वह स्वयं शमशेर के लिए कहीं भी मौजूद नहीं था।

मार्क्सवादी और गैर-मार्क्सवादी, दोनों ही तरह के आलोचकों ने और पाठकों ने भी प्रायः अज्ञेय की तरह ही शमशेर के अंदर मार्क्सवाद को लेकर द्वंद्व चलते हुए देखा है। यहाँ मुक्तिबोध को लेकर अब तक चली आ रही उलझन की याद आना स्वाभाविक है। शमशेर और मुक्तिबोध में कई स्तरों पर समानता है। कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि मुक्तिबोध को लेकर जो बहस थी, उसने अपनी परिणति प्राप्त कर ली है और यह अंततः हिंदी की प्रौढ़ आलोचना-दृष्टि के कारण ही संभव हो सका है। लेकिन अभी हाल में, शमशेर की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में 'सापेक्ष' नामक पत्रिका का जो अंक निकला है, वह उसे गलत साबित कर देता है। मार्क्सवादी आलोचक डॉ.शिव कुमार मिश्र ने सुल्तान अहमद को दिए गए इंटरव्यू में यह विचार व्यक्त किया है - 'मुक्तिबोध की कविता में ऐसा कुछ है जो दूसरों को पार्टिक्यूलरली मार्क्सवाद के विरोधियों को यह गुंजाइश देता है कि वे उन्हें अपने ढंग से एनालाइज़ करके महान सिद्ध कर

दें।..... उनमें भी ऐसा तमाम कुछ है, जो उनकी मार्क्सवादी, प्रगतिशील, ह्यूमन, मानसिकता से मेल नहीं रखता।' 'वह तमाम कुछ' क्या है, जो प्रगतिशील, मानवीय मानसिकता के विरुद्ध है? पूरे इंटरव्यू में शिवकुमार जी यह नहीं बताते। लेकिन वे यह ज़रूर कहते हैं कि शमशेर में मनुष्य, समाज, राष्ट्र और उनके भविष्य को लेकर गहरी चिंता का भाव है; वे तमाम मानव-विरोधी शक्तियों के आजीवन खिलाफ रहे; वे सेक्यूलर-माइंडेड ह्यूमन थे; वर्ण, जाति, धर्म और नस्ल जैसी संकीर्ण विचारधाराओं से बहुत दूर थे; मनुष्यता के बारे में, उसके सुख-दुख के बारे में, सामान्यजन के बारे में, निर्धन जनता के बारे में, मध्य वर्ग की आर्थिक बदहाली के बारे में उन्हें चिंताएँ थीं। यह सब कुछ कहने के बाद, शमशेर की संवेदना का दायरा बहुत विशाल देखने के बाद भी शिवकुमार जी यह कहने को मजबूर हैं कि 'बहुत से ऐसे प्रभाव भी शमशेर पर रहे, जिनको एक सीमा तक रुग्ण भी कह सकते हैं।' ये रुग्ण प्रभाव क्या हैं और उनके कौन-से लक्षण शमशेर में प्रकट होते हैं, इसे स्पष्ट करना शिवकुमार जी को ज़रूरी नहीं लगा।

शमशेर पर रुग्ण प्रभाव देखने का यह रोग नया नहीं है, यह 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में संकलित डॉ. रामविलास शर्मा के निबंध 'शमशेर बहादुर सिंह का आत्म-संघर्ष और उनकी कविता' को पढ़ने से पता चलता है। शमशेर इलियट-पाउण्ड के प्रशंसक थे। डॉ. शर्मा ने इस पर टिप्पणी की है -- 'शमशेर यह कहकर अपने मन को समझा लेते थे कि इलियट-पाउण्ड की 'अस्वस्थ' विषय-वस्तु से हमें क्या लेना-देना है, हम तो उनके शिल्प को सराहते हैं। वास्तव में बात थी इन 'अस्वस्थ' कवियों के भाव-बोध पर मुग्ध होने की। उनका भाव-सौंदर्य उन्हें अपनी ओर खींचता था और उनका विवेक उन्हें फटकारता था कि यह सब व्यक्तिवादी प्रपंच है।' अज्ञेय ने कवि की मूल्य-दृष्टि और उसकी घोषित राजनीति में विरोध देखा था। यहाँ डॉ. शर्मा कवि के भाव-बोध और उसके विवेक में खींचतान देखते हैं। यह विवेक मार्क्सवाद ही है। विवेक (मार्क्सवादी) और भाव-बोध (अस्वस्थ व्यक्तिवादी) के बीच द्वंद्व मुक्तिबोध में भी था। पर डॉ. शर्मा इन दोनों में फर्क यह पाते हैं कि जहाँ मुक्तिबोध में इसे लेकर काफी उलझन थी, वे तड़पते थे, अपने-आपसे लड़ते थे, लहूलुहान हो जाते थे, वहीं शमशेर सजीले जिस्म के गुनगुनाने पर रीझ कर रह जाते हैं, अंधेरे कुएँ या बावड़ी में उतरने की फ़ुरसत उन्हें नहीं मिलती।

क्या संयोग है कि कुछ ऐसा ही द्वंद्व या संघर्ष डॉ. रघुवंश को भी दिखलाई पड़ता है,.....'वैचारिक स्तर पर शमशेर में एक विरोधाभास बना रहा है।.....व्यक्तित्व की प्रखर चेतना के साथ उसमें सामाजिक दायित्व का आग्रह भी है। इस प्रकार का आंतरिक द्वंद्व योरोप के तथा पश्चिम के ओडेन, स्पेण्डर, पाब्लो नेरूदा, लोर्का तथा आरेगा जैसे अनेक कवियों में पाया जाता है.....परंतु जिनमें यह द्वंद्व वैयक्तिक चेतना और सामाजिक दायित्व की भावना का है, उनको शमशेर की तरह शुद्ध कवि-दृष्टि और प्रभावानुभव में पलायन की सुविधा नहीं मिल सकी।' सजीले जिस्म पर रीझकर रह जाने के रुग्ण स्वभाव के साथ यहाँ हमें शमशेर के पलायनवादी चरित्र का भी पता चलता है। रघुवंश जी की धारणा है कि कवि अपने इस अंतर्द्वंद्व का 'समुचित समाधान सर्जन के स्तर पर' नहीं कर सका है। 'सापेक्ष'. के 'शमशेर-अंक' में डॉ. रामविलास शर्मा अपनी तीन दशक पुरानी धारणा को दुहराते हुए अपनी बात को स्पष्ट करते हैं- 'शमशेर की रचनाओं में काव्य-कौशल को लेकर उधेड़बुन ज्यादा है। उनकी उलझनों का एक कारण यह है कि वे अपने रीतिवादी रुमानी सौंदर्य-बोध से अपने मार्क्सवादी विवेक की संगति नहीं बिठा पाए।'

22.2.3 विवेक और भावबोध का द्वंद्व

विवेक यानी मार्क्सवाद और भाव-बोध के बीच कोई अंतर खुद शमशेर महसूस करते थे या नहीं, और अगर करते थे तो उनका समाधान उन्होंने किस तरह किया -- इस पर हम आगे चलकर विचार करेंगे। अभी हिंदी आलोचना में बिल्कुल ही अलग पद्धतियों और विश्वासों को लेकर चलने वाले चिंतकों के बीच इस मसले पर जो एकमत स्थापित हुआ है, भले ही उनके

मकसद अलग-अलग हों, उसे ठीक से देखना कवि को समझने के लिहाज से तो उपयोगी होगा ही, अपने आप में शिक्षाप्रद भी होगा। विजयदेव नारायण साही के चर्चित निबंध 'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट' में भी कवि के विवेक और सौंदर्य-बोध के दरम्यान एक ऐसी खाई देखी गई है, जिसे वह नहीं पाट सका है। साही ने मार्क्सवाद को लेकर शमशेर के अंदर चलने वाली कशमकश के क्रमिक विकास को कुछ इस तरह देखा है - 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में शमशेर 'समाज-सत्य' को आग्रहपूर्वक 'मार्क्सवाद' का पर्याय घोषित करना ज़रूरी समझते हैं। 1961 तक जो चीज़ मार्क्सवाद थी, वह 'समाज', 'सत्य का मर्म' हो गई। बेशक इन दस वर्षों में परिवर्तन हुआ है, कम से कम आग्रह का। कम से कम शमशेर के लिए एक लाभ इसमें अवश्य दिखता है कि 'अपनी भावनाओं में', 'अपनी प्रेरणाओं में', 'अपने संस्कारों में, 'समाज-सत्य के मर्म को ढालना' और उसमें अपने को पाना उतना कठिन नहीं है जितना वह जिसे वे मार्क्सवाद के नाम से अभिहित करते हैं।' दूसरे शब्दों में, शमशेर धीरे-धीरे मार्क्सवाद के बंद दायरे से बाहर निकलते हैं, उससे मुक्ति प्राप्त करते हैं। लेकिन इस मुक्ति के बाद भी वे समाज-सत्य के मर्म को अपनी प्रेरणाओं में ढालना चाहते हैं। साही अपने इसी निबंध में इस संबंध में ये विचार व्यक्त करते हैं - 'समाज-सत्य को निजी उपलब्धि बनाना उसे आत्मसात करना या उपयोग में लाना है। लेकिन शमशेर के लिए काव्यानुभूति के केंद्र में.....उसकी सत्ता नहीं है। ..... वह एक तरह से हाशिये पर स्थित है।' वे आगे कहते हैं - '.....'उस दौर' में भी जब वह वास्तविकता के बाहरी आकारों की ओर बहुत आकर्षित थे, तब भी उनके लिए मार्क्सवाद शुद्ध वस्तुपरकता का दूसरा नाम था।' इसीलिए जो चीज़ 'उस दौर' में भी हाशिये से आगे नहीं बढ़ी थी, बाद में उसका (मार्क्सवाद का) 'छूटता हुआ दामन उनके लिए मोह-भंग का रूप नहीं लेता, बल्कि केंचुल छोड़कर चुपचाप आगे बढ़ जाने की अनुभूति देता है।' साही के अनुसार शमशेर का विकास प्रगतिवादी दौर के बाद मार्क्सवाद से मुक्ति की दिशा में हुआ है। वैसे तो उस दौर में भी वह हाशिये पर ही था, पर अब तो उतारी हुई केंचुल की तरह वह पीछे छूट गया है।' इस मान्यता को शमशेर ने स्वयं आगे चलकर चुनौती दी है।

यह देखना बहुत मुश्किल नहीं कि मार्क्सवादियों और गैर-मार्क्सवादियों को भी शमशेर के मार्क्सवाद को लेकर हमेशा संशय बना रहा। इसकी वजह उन्होंने खुद बताई है - '.....मैं उस अर्थ में मार्क्सवादी कभी नहीं रहा जिस अर्थ में मेरे प्रगतिशील दोस्त, मसलन शिवदान चौहान और राजीव सक्सेना हैं।' 1964 में साही ने बताया कि शमशेर ने मार्क्सवाद को केंचुल की तरह उतार दिया है, यहाँ 1991-92 में खुद शमशेर ज़ोरों से मार्क्सवाद को अपनी सच्ची ज़रूरत बता रहे हैं। सिर्फ अपने लिए ही नहीं, रचना-कर्म मात्र के लिए मार्क्सवाद की क्या अहमियत है - एक इंटरव्यू में उसके बारे में वे कहते हैं, 'एक लेखक के रूप में मार्क्सवादी होना ज़रूरी है, इस तथ्य को मैं व्यावहारिक रूप में मानता हूँ।' यानी मात्र सैद्धांतिक स्तर पर नहीं, व्यावहारिक स्तर पर, रचना-कर्म के ठोस धरातल पर मार्क्सवाद की अनिवार्यता उनकी निगाह में बनी हुई है। लेकिन यह मार्क्सवाद, जो शमशेर का 'लिविंग प्रिंसिपल' है, वह उनके प्रगतिशील मित्रों के मार्क्सवाद से थोड़ा (!) भिन्न है। यह भिन्नता इसलिए है कि उन्होंने मार्क्सवाद को विचारधारा मात्र के रूप में ग्रहण नहीं किया, बल्कि वह उसे मानव के गहनतम चिंतनों से जुड़ा हुआ मानकर चलते रहे। अन्सर्ट फिशर ने 'आर्ट आइडियोलॉजी' में लिखा है - 'मार्क्सवाद एक विचारधारा नहीं है, लेकिन कम्युनिस्ट पार्टियों ने एक विचारधारात्मक व्यवस्था खड़ी की और उसे 'मार्क्सवाद-लेनिनवाद' का नाम दिया।' उनका कहना है कि विचारधारा में विचार अपनी गति खो देते हैं, इस कारण वे अपनी द्वंद्वात्मकता खो देते हैं और परिणामस्वरूप अपनी वास्तविकता भी। विचारधाराएँ बंद किलों की तरह हैं। यहाँ विचार 'डॉग्मा' के ताबूत में बंद कर दिया जाता है। फिशर लिखते हैं कि प्रत्येक विचारधारा में सत्य का परिणाम नहीं, बल्कि 'ताकत का सबूत' ही निर्णायक तत्व हो जाता है। पर मार्क्सवाद के बारे में उनका विचार है कि वह शक्ति-परीक्षा पर नहीं, बल्कि यथार्थ की सापेक्षता में तुलनीय अपने वैज्ञानिक निष्कर्षों के सत्य पर निर्भर करता है। मार्क्सवाद का लक्ष्य, उसका स्वप्न है - संपूर्ण मनुष्य। जो अलगाव का शिकार न हो, जिसकी प्रत्येक क्षमता विकसित हो, यानी सृजनशील मनुष्य! मार्क्सवाद को 'गाइड टु एक्शन' कहा जाता रहा है, पर वह 'डायरेक्ट गाइड टु एक्शन' नहीं है। फिशर ठीक ही कहते हैं कि मार्क्सवाद का विलक्षण सर्जनात्मक पक्ष यह नहीं है कि वह

वर्ग-संघर्ष का आह्वान करता है। (क्योंकि मार्क्स के बहुत पहले ही वर्गों और वर्ग-संघर्ष के अस्तित्व की खोज की जा चुकी थी), बल्कि यह है कि वह वर्ग-संघर्ष के दौरान अपने आपको पहचान पाने, उद्घाटित करने, स्वयं को प्राप्त कर पाने के मनुष्य के ऐतिहासिक लक्ष्य की चेतना प्रदान करता है।

कला या साहित्य के इतिहास से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रचनाकार प्रायः विचारों के प्रति आकर्षित होता है, विचार-प्रणाली के प्रति नहीं। विचार-प्रणाली या विचारधारा उसे हमेशा अपर्याप्त और बंधनकारी जान पड़ी है। दुनिया-भर के रचनाकारों पर मार्क्सवाद का असर उसमें निहित समाजवाद के उस विचार के चलते हुआ, जिसमें आज़ादी, न्याय, मानवीयता - मनुष्य का स्वप्न और एक स्वप्न की भांति मनुष्यता निर्णयकारी तत्व है। रचनाकार का संघर्ष मनुष्य के अकेले होते जाने, उसके संवेदनहीन होते जाने, विकृत, अपाहिज होते जाने के विरुद्ध है। इसीलिए उस व्यवस्था के विरुद्ध भी है जो व्यक्ति को इन स्थितियों की ओर ज्यादा से ज्यादा ढकेलते जाती है, उसे और दबाती जाती है। कम्युनिज़्म इससे मुक्ति का ही नाम है, जैसा मार्क्स ने 1844 की आर्थिक और दार्शनिक पांडुलिपियों में लिखा है - 'कम्युनिज़्म को इसकी चेतना है कि वह मनुष्य का पुनः एकीकरण या मनुष्य की स्वयं उसके पास वापसी है, मनुष्य के आत्म-निर्वासन का अतिक्रमण है....और....इस प्रकार मनुष्य के लिए मनुष्य के द्वारा ही मानवीय सत्व का वास्तविक अर्थ में अधिग्रहण है।' उनकी निगाहों में कम्युनिज़्म यह है - 'यह मनुष्य और प्रकृति के बीच और मनुष्य और मनुष्य के बीच के द्वंद्व का वास्तविक समाधान है; स्वतंत्रता और आवश्यकता के बीच, व्यष्टि और प्रजाति के बीच के संघर्ष का वास्तविक समाधान है।' वर्ग-संघर्ष चल रहा हो या नहीं, इतिहास के किसी भी दौर में मनुष्य की पूरे तौर पर वापसी, उसके अधूरेपन का खात्मा, यह कल्पना हमेशा ही आदमी की, जो है, उससे बेहतर की ओर जाने की प्रेरणा देती रहेगी। वास्तविकता कितनी ही कठिन क्यों न हो, यह स्वप्न उसका सामना करने की शक्ति प्रदान करता रहेगा। मार्क्सवाद इस रूप में ही सार्थक बना रह सकता है कि वह इस चेतना को बनाए रखे। शमशेर कहते हैं - 'मार्क्सवाद के मूल में व्यक्ति की जो सकारात्मक आज़ादी का पक्ष छिपा है, उसे ठीक से समझे बिना मनुष्य की बराबरी के समाज की कल्पना नहीं की जा सकती।' पिछले कुछ सालों में दुनिया-भर में हुई तब्दीलियों को ध्यान में रखें, तो यह कथन बहुत सार्थक हो जाता है। व्यक्ति की सकारात्मक आज़ादी से क्या मतलब है? पूँजीवादी समाज में यह किस तरह गुम हो जाती है? आदमी के महसूस करने की ताकत यदि कुंद कर दी जाए तो वह कई तरफ से गुलाम हो जाता है। पूँजीवादी समाज में पूरा समाज ही उपयोगितावाद का कैदी होता है।

मार्क्सवाद, दरअसल, उपयोगितावाद से मुक्ति का कार्यक्रम है। लेकिन अगर कम्युनिस्ट पार्टियों की शासन-व्यवस्था में व्यक्ति की उन्हीं आंतरिक क्षमताओं, उन्हीं संवेदनाओं, उन्हीं कल्पनाओं को स्वतंत्रता दी जाएगी, जो उनके हिसाब से पार्टी के लिए, समाज के लिए, वर्ग-संघर्ष को आगे ले जाने के लिए, समाजवाद को दृढ़ करने के लिए उपयोगी हैं और अगर यहाँ बाकी भावनाओं, संवेदनाओं को अनुपयोगी, इसलिए अंधेरे कोने में डाल दिए जाने लायक मान लिया जाएगा तो यह व्यवस्था भी अंततः मानव-विरोधी ही साबित होगी। मार्क्सवाद को 'सर्विस मैनुअल' में बदलते ही मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र का एक 'मैनुअल' तैयार किया जाने लगा और संवेदनाओं की काट-छाँट शुरू हो गई। इस तरह, समाजवाद के उन्मुक्त विचार को विचारधारा के ताबूत में बंद कर दिया गया। समाजवादी विश्व में जो परिवर्तन होने वाले थे, शमशेर को एक सच्चे मार्क्सवादी की तरह उनका पूर्वाभास था, 'कम्युनिस्टों के पुराने, हठी और पत्थरनुमा चरित्र के विरुद्ध जनता कहीं न कहीं विचारों की मुक्ति चाहती है, जीवन में सकारात्मक, संवेदनात्मक आज़ादी की माँग करती है।'

अन्र्स्ट फिशर ने लिखा है कि पत्थर हो चुकी विचारधाराओं के विरुद्ध उत्पन्न होने वाले नए विचार उथल-पुथल मचा देते हैं, विरोध को जन्म देते हैं और अंततः जनता को अपनी गिरफ्त में लेकर एक वास्तविक शक्ति में परिणत हो जाते हैं। शमशेर ने जनता के अंदर विचारों की ही नहीं, जीवन में संवेदनात्मक आज़ादी की भूख को भी बिल्कुल सही पहचाना था। ऊपर से इस

बात में कोई खासियत नज़र नहीं आती, लेकिन जब हम अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर थोड़ी गहराई से नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि दिन-भर में हमें न जाने कितने प्रकार के अनुभव होते हैं, यह दुनिया, यह प्रकृति कितने रूपों में हमसे टकराती है, लेकिन हम उन सारे अनुभवों, उन सारी मुठभेड़ों का अर्थ नहीं समझ पाते। रास्ता चलते किसी नन्हे बच्चे की आँखों में भरी शरारत, खास ढंग से किसी पेड़ की डाली का हिल उठना, किसी कमज़ोर बूढ़े या औरत का थककर अचानक ही सड़क पर ही बैठ जाना और अपने ही हाथों अपने पाँव दबाने लगना - जाने कितनी ही चीज़ें हमारे आगे से हवा की तरह गुज़र जाती हैं, हमें छू नहीं पातीं, हम खुद उन पर ध्यान देने के लिए मुक्त नहीं होते। संवेदनाओं की समृद्धि और संवेदनाओं की आज़ादी का गहरा रिश्ता है। शमशेर आजीवन मार्क्सवाद के पक्षधर इसीलिए बने रहे कि वह मानवीय संबेदनाओं के उपयोगिता के दायरे से अलग, उनकी स्वतंत्र सत्ता में स्वीकार करने के प्रति आग्रहशील हैं और संघर्षशील भी। इस रूप में देखें तो 1936 में स्थापित प्रगतिशील लेखक संघ के नेतृत्व में चलने वाली प्रगतिवादी धारा की सौंदर्य-दृष्टि से वे उसी तरह अलग दिखलाई पड़ते हैं जैसे मुक्तिबोध। इस भिन्नता को इन दोनों से कहीं ज्यादा प्रगतिवाद के सिद्धांत-निर्माताओं ने चिह्नित किया। सकारात्मक मनुष्य, सकारात्मक मूल्य और उनकी उपयोगिता उन पर इतनी हावी थी कि इनसे अलग जो कुछ भी दिखा, उसे गैर-ज़रूरी और पतनशील तक घोषित कर दिया गया।

'समीक्षा की समस्याएँ' नामक निबंध में मुक्तिबोध ने इस स्थिति को यों व्यक्त किया - "प्रगतिवादियों के व्यवहार से यह सूचित होता (था) कि वे मुक्ति-संघर्ष, राष्ट्र-प्रेम, प्राकृतिक सौंदर्य, नारी-सौंदर्य, यथार्थ आलोचना-भावना, आशा, उत्साह तथा तत्समान अन्य भावों को प्रगतिशील समझते हैं। किंतु शेष सब भावनाएँ, जैसे भयानक ग्लानि, निराशा-अनाशा, वैफल्य तथा इसी श्रेणी की अन्य सभी भावनाएँ प्रतिक्रियावादी हैं।' इस प्रवृत्ति पर अफसोस ज़ाहिर करते हुए वे कहते हैं कि चूँकि मार्क्सवादी दर्शन यथार्थ-विकास का, मानव-संज्ञा के विकास का दर्शन है, इसलिए उसके लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण और मूलभूत है 'जीवन-तथ्यों की वास्तविकता।" वे कहते हैं कि साहित्य के प्रश्न मूलतः जीवन के प्रश्न होते हैं। 'अतः लेखक के वास्तविक मनोवैज्ञानिक-संवेदनात्मक जीवन और उसकी अभिव्यक्ति के प्रश्न, वस्तुतः उसके जीवन के प्रश्न होते हैं।' ज़रूरी नहीं कि एक आर्थिक वर्ग में रहने वाले या एक ही सामाजिक उद्देश्य को समर्पित दो व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक-संवेदनात्मक जीवन भी एक से हों। इसलिए ज़रूरत हो जाती है - दूसरे की संवेदनाओं के प्रति सहिष्णुता और सम्मान की भावना की।

शमशेर की तरह मुक्तिबोध भी विचारों के विकास, विचारों की मुक्ति की ज़रूरत महसूस करते हैं। कहते वे इसे इस रूप में हैं, "विचारधारा या भावधारा, सिद्धांत-व्यवस्था अर्थात् ज्ञान-व्यवस्था से प्राप्त सत्य, मूलतः यथार्थ का निकटतम चित्र है। किंतु और निकट पहुँचने की आवश्यकताएँ और संभावनाएँ बढ़ती ही जाती हैं। इसलिए सैद्धांतिक विकास भी आवश्यक होता है।" यहाँ मार्क्सवाद को विचारधारा से भिन्न रूप में ग्रहण करने पर बल है। लेकिन आरंभिक प्रगतिवाद, उस दौर के अनुरूप ही, मार्क्सवाद की एक सिद्धांत-व्यवस्था के अनुकूल संवेदन-व्यवस्था तैयार करके उसी कसौटी पर रचनाओं को परखता भी रहा। इसका नतीजा यह हुआ, जैसा इसी लेख में मुक्तिबोध ने लिखा, "यह भी पाया जाता है कि हम लोग, अपने से जो भिन्न है और भिन्न प्रकार के मनोविज्ञान को प्रदर्शित करता है,.....उसके बारे में यों ही विरोध भाव बना लेते हैं.....हम उसकी रचनाओं की उपेक्षा कर जाते हैं, यद्यपि उसकी रचनाएँ उपेक्षा-योग्य नहीं होतीं।" शमशेर बहादुर सिंह को प्रगतिवादियों ने प्रतिपक्षी तो नहीं समझा, लेकिन अपने से भिन्न प्रकार के मनोविज्ञान को अभिव्यक्त करने वाली उनकी रचनाओं को बर्दाश्त करने में उन्हें खासी तकलीफ होती रही।

अपने जीवन में मार्क्सवादी मूल्यों को स्वीकार करके चलने वाले रचनाकारों में सबसे अधिक संघर्ष मुक्तिबोध और शमशेर को ही करना पड़ा क्योंकि इनका ढंग बिल्कुल निराला था। इन दोनों को दुश्मन नहीं, लेकिन दुश्मन को मदद पहुँचाने वालों के रूप में सशंकित भाव से देखा जाता रहा। मुक्तिबोध के विस्फोटकारी सामाजिक, राजनीतिक स्वर ने और उनके भीषण

सैद्धांतिक संघर्ष ने मार्क्सवादियों के बीच उनके प्रति विरोध को तो कम किया, लेकिन शमशेर के संपूर्ण कृतित्व को स्वीकार करने में हिचकिचाहट बनी हुई है। इसकी वजह है - भावबोध या सौंदर्यबोध के स्तर पर विचारधारात्मक जड़ता का बने रहना। इसका प्रमाण यह है कि शमशेर को मार्क्सवादी सिद्ध करने के लिए 'समय साम्यवादी' या 'लेकर सीधा नारा' जैसी कविताओं का ही उदाहरण देना पड़ता है। 'जनाधार' और 'मनाधार' वाले प्रगतिवादी दौर का विभाजन, जिसे प्रगतिवाद विरोधियों ने भी स्वीकार कर लिया, अभी भी बना हुआ है। इसे 'सापेक्ष' के 'शमशेर अंक' में नागार्जुन, डॉ.रामविलास शर्मा, डॉ. शिवकुमार मिश्र आदि के विचारों को देखकर भी समझा जा सकता है। उनके संपूर्ण कृतित्व को अलग-अलग खानों में बाँटने की प्रवृत्ति नागार्जुन के इस कथन में है - '.....यों करें (कहें?) कि 60 परसेंट प्रयोगवादी, 20 परसेंट प्रगतिशील हैं, और 20 परसेंट जीवनधर्मी.....कुछ इधर-उधर और भी हैं।' यह दिलचस्प खानाबंदी प्रगतिशीलों ने ही की हो, ऐसा नहीं। शमशेर बहादुर सिंह को समझने और पसंद कर पाने के लिए कविता पढ़ने की कुछ वैसी आदत विकसित करने की ज़रूरत है जिसके अभाव का अफसोस 'दूसरा सप्तक' के ही कवि रघुवीर सहाय की इन पंक्तियों में है :

मेरी कविता में ऊषा के
भीतर मेरी मृत्यु लिखी
चिड़िया के भीतर है मेरी
राष्ट्रभावना, बच्चों में दुख।
माना सब कुछ गबड़ सबड़ है
पर मैंने यों ही देखा था...

कवि ने जिस तरह चीज़ों को देखा था, लोग उस तरह उसकी कविताओं को पढ़ते नहीं, "पढ़े तो / उसमें कुछ चटपटा नहीं रह / जाता, बच बचता विषाद है।"

शमशेर बहादुर सिंह के लिविंग प्रिंसिपल की पहचान उनके मार्क्सवादी नज़रिए को समझे बिना संभव नहीं। ऐसा नहीं था कि कवि-जीवन की शुरूआत से ही वे मार्क्सवादी थे। 'दूसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में उन्होंने अपने शुरूआती दौर के बारे में लिखा है, '.....सन 38-39 .....से सन 42 तक मेरा रुझान ज्यादातर क्या बिल्कुल अपनी ही दुनिया के अंदर खिंचते चले जाने की तरफ रहा।' रंजना अरगड़े से बातचीत में उन्होंने कहा, '37-38-39 उस समय की मेरी कविताएँ (अधिकांश) बड़ी Grim होती थीं। मेरे जीवन में कुछ उल्लास नहीं रह गया था।' उल्लास न रह जाने का कारण था - जीवन में भयानक अकेलापन। उनके भाई डॉ. तेज बहादुर चौधरी ने उन पर लिखे अपने संस्मरण में छुटपन में माँ के गुज़र जाने, फिर पिता द्वारा दूसरा विवाह कर लेने के बाद उनमें पुत्रों के प्रति आ गई उपेक्षा और घर से अलग हॉस्टल की ज़िंदगी की चर्चा की है। अपनों के स्नेह के अभाव के साथ-साथ बाकी अभाव भी थे। इस जीवन की चर्चा करते हुए रंजना अरगड़े को शमशेर ने बताया, 'मैं अपने संसार में रहा। मेरी अपनी ज़िंदगी बन गई।' यह ज़िंदगी कला की थी, साहित्य की थी।

'यात्रा' नामक गद्य-खंड में शमशेर की इस मनःस्थिति की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है - 'मैं गरीब, मगर अपने दीन वस्त्रों में, अपनी बाह्य दशा में संतुष्ट। कारण कि काव्य और कला और नए प्रेम के हरिताभ सपनों और कुसुमित आशाओं और सुनहरी छाया में भ्रमा हुआ मेरा मन, सुख और पीड़ा से एक साथ विह्वल। अपना परिवार अपने चारों ओर केवल मूक वृक्षों और बादलों, और शाम के प्रहरों और चाँदनियों में देखता।' इस मनोदशा में मनुष्य की दुनिया निजी संसार से एकदम अलग ही जाति की मालूम पड़ती थी। पत्नी की मृत्यु ने इस मनोदशा को और गहरा कर दिया। फिर तो कला की दुनिया ही अपनी दुनिया लगने लगी, 'केवल एक पूर्ण कलित कला की आभा मेरी दौलत, मेरी निधि और मेरी अपनी गति, प्रेम और कला-साधना के संकेतों से संचालित।' इस उद्धरण में प्रेम शब्द पर ध्यान देने की ज़रूरत है। बाद में खुद शमशेर सचेत भाव से अपने इस दौर का विश्लेषण करते हुए खुद को 'मध्य वर्ग का करैक्टर' मानकर इसे एक स्तर पर नरेन्द्र और बच्चन के 'अभाव' और 'सोशल घुटन' से भी जोड़ते हैं।

लेकिन अपनी इस ज़िंदगी को एक हद तक ही पलायन कहते हैं क्योंकि ज़िंदगी के कुछ ज्यादा टूटे-फूटेपन और उखड़े बहाव की वजह से जीवन में खामोश लेकिन तेज़ भंवर बन जाते हैं। इस तरह, एकाकीपन शमशेर के लिए चुनाव की वस्तु नहीं रह गया था।

एकाकीपन शमशेर के लिए उतनी ही ठोस हकीकत था, जितनी उनके लिए मौत थी। एक दूसरे ढंग से कहा जा सकता है कि मौत उनकी ज़िंदगी का नक्शा बना रही थी। शमशेर के भाव-जगत के सदस्य वे लोग थे जो अब इस ज़िंदगी में नहीं रह गए थे। जैसे अंधकार में आँखों के कारगर न रह जाने पर शेष इंद्रियों का बोध अत्यंत तीक्ष्ण हो उठता है, वैसे ही अकेलेपन ने प्रकृति, पृथ्वी और समाज से खुद को जोड़ने वाले तंतुओं के प्रति शमशेर की संवेदनशीलता को अत्यंत तीव्र कर दिया था। उनकी रचनाओं के विषाद-भरे स्वर की विशिष्टता को पहचानना उनके इस जीवन-तथ्य को समझे बिना संभव नहीं। कारण यह है कि उनके संपूर्ण काव्य में जिस गहन वेदना की अंतर्धारा प्रवहमान है, वह उनकी वास्तविक जीवन-परिस्थितियों से उत्पन्न है। 'समीक्षा की समस्याएँ' शीर्षक लेख में मुक्तिबोध ने लिखा है - 'एक विशेष जीवनावस्था की विशेष परिस्थितियों में और उन परिस्थितियों की प्रायः नित्यता की स्थिति में, एक विशेष प्रकार की रूप-शैली की संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ अपनी तीव्रतम बारंबरता स्थापित कर लेती हैं।' इसीलिए मुक्तिबोध रचनाकार के वर्ग के साथ-साथ उसके परिवार, परिवेश, परिस्थिति, व्यक्तित्व और मनोरचना के प्रति दिलचस्पी रखना ज़रूरी मानते हैं। उसकी रचनाओं को समझने के लिए वे लेखक के व्यापक अध्ययन को भी वांछनीय मानते हैं। शमशेर के व्यक्तित्व-निर्माण में और बातों के साथ-साथ उनका यह एकाकीपन केंद्रीय स्थान रखता है। ऐसा नहीं कि 'सोशलिज़्म' के विचार से संपर्क तथा कम्युनिस्ट पार्टी के संसर्ग के कारण यह भाव तिरोहित हो गया हो। दूसरा रूप इसने ज़रूर ग्रहण कर लिया था, जैसा कि 1963 की उनकी डायरी के इन वाक्यों से पता लगता है, 'सहज वार्तालाप, सहज संग मेरा खो गया है। मेरा अकेलापन मेरे युग में अकेलापन जैसा हो गया है।' अपने अकेलेपन को अपने युग के साथ जोड़कर एक बहुत ही जटिल एकाकीपन की रचना उन्होंने अपने लिए की थी। यह उन्हें अपने समकालीनों में, उनके भावों, उनके विचारों में घुल-मिल जाने से कहीं न कहीं रोक देता है, लेकिन ज़माने से काट नहीं देता पूरी तरह। उनका यह विश्वास भरा वाक्य इस प्रमाण है - 'फिर भी मैं युग की नब्ज़ को शायद ज्यादा अच्छी तरह पहचानता हूँ।'

इस अकेलेपन में रहते हुए स्नेह, प्रेम की तलाश भी शमेशर में लगातार दिखलाई पड़ती है। मार्च, 1963 की डायरी का एक हिस्सा है - '.....कुछ अपने लिए, स्नेह के क्षण के अलावा (अगर निर्मल और सहज है) और कुछ नहीं चाहता। वह क्षण क्या काफी नहीं।.....' यह स्नेह का क्षण मिलना मुश्किल था, सितंबर, 1962 की डायरी की ये तड़प भरी पंक्तियाँ इसी ओर इशारा करती हैं, 'दूसरों के लिए ललक कर बढ़ने, कुछ करने ही में क्या है? इसमें सिवाय हवा बनने के और कुछ हासिल नहीं चाहता हूँ मैं एक तोल-मशीन की झिरी होऊँ।' पूरा माहौल, जो उन्हें चारों ओर से घेरकर दबा रहा था, भरोसे से इतना खाली हो चुका था कि वे तोल-मशीन की तरह विश्वसनीय बन जाना चाहते थे। वे आगे लिखते हैं, 'मुझे किसी से कुछ नहीं कहना चाहिए। यह भी नहीं चाहता कि मुझसे कोई कुछ न चाहे। कोई रोक नहीं। पर मुझे किसी से कुछ नहीं चाहिए' दूसरों से कोई अपेक्षा न करने का यह भाव बाद में भी बना रहता है। मार्च, 1967 के एक पत्र की ये पंक्तियाँ 56 साल की उनकी ज़िंदगी का अनुभव बताती हैं- 'दुनिया में कोई किसी को प्यार-व्यार नहीं करता । (यह मैं अपनी कह रहा हूँ.....) ....मुझे.....कभी किसी से कोई उम्मीद नहीं रही है।' लेकिन अगर उनकी दुनिया उम्मीद से खाली होती तो, शायद मार्बिड या रुग्ण होकर रह जाती। दूसरों से उम्मीद न रखने पर भी एक दूसरा अहसास उनमें था, जो बड़े ही मार्मिक ढंग से यों व्यक्त हुआ है - 'मगर मैं उसे कतई नहीं जानता....। आगे टैगोर के हवाले से प्रेमी का आदर्श रूप खींचते हुए वे कहते हैं कि वह ऐसा होना चाहिए कि जिसे वह चाहता है, उस पर कोई दबाव न डाले, उसे पूरी तरह आज़ाद छोड़ दे। उसे ऐसा होना चाहिए, 'इतना निःसंग, इतना बेगरज, इतना तटस्थ और फिर भी हमारे रग-रग के सुख और दुख से वाकिफ। वाकिफ है मगर हमें यह जानने नहीं देता कि वह वाकिफ है। न हमसे मिलने का आग्रह, न हमें अपनी तरफ खींचने की रत्ती भर कोशिश' प्रेम

का यह ऐसा उच्चादर्श है, जो औरों को बकवास लग सकता है - इतना अहसास शमशेर को भी है। और वे यह भी जानते हैं कि जिस दुनिया में वे रह रहे हैं, वहाँ इस आदर्श को लेकर चलने से ठगे जाने के खतरे ज्यादा हैं। वे खुद किसी पर दबाव डालना न चाहें, लेकिन ऐसा लगता है, जैसे, '....कहीं मैं चेखोव का ऐसा पात्र हूँ जो खुद कुछ नहीं, जिसे दूसरे हर वक्त अपने साँचे में ढालते रहते हैं। वे पूछते हैं 'क्या यही ज़िंदगी है?' इसलिए शमशेर 'एक अदृश्य कवच-निरहंकार, तटस्थ निर्मलता का' चाहते हैं, जिसे पहनकर वे इस क्रूरता-भरे जीवन का सामना कर सकें। आश्चर्य नहीं कि तरुणावस्था में जिस कला ने उन्हें अपने अंदर खींचकर अकेलेपन से मुक्त किया, विश्व से जुड़ने का रास्ता दिखाया, वह आगे भी उनके लिए वैसी ही बनी रही, 'अगर्चे कोई चीज़ बजाहिर मुझे बाँधती नहीं : सिवाय शायद कला की सच्चाई के। ज़िंदगी को मैं शायद उसी के सहारे, उसी की परतों में टटोलता, समझता, झेलता चलता आ रहा हूँ।' अपनी चेखोवियन ज़िंदगी और उसकी नियति को निरहंकार तटस्थता के साथ देखने की कूवत शमशेर ने कहाँ से पाई, जिससे वे खुद किनारे पर खड़े होकर अपने आपको, अपने रिश्तों को निःसंग भाव से देख पाते थे? वेदना के साथ-साथ यह निःसंगता उनकी भावुकता को महज उन तक नहीं रहने देती, उसे आँसुओं से लथपथ नहीं करती, उसमें एक विलक्षण कठोरता भर देती है।

शमशेर चाहते तो जीवन-भर अकेलेपन के गीत गाते रह सकते थे। लेकिन जो कला की सच्चाई उन्हें बांधती थी, वह अकेलेपन में गर्क होने की जगह संपूर्ण प्रकृति और समाज से जुड़ने का आह्वान करती थी। जैसा उन्होंने लिखा है, वे अस्तित्ववाद के संपर्क में भी आए और सुर्रियलिज़्म ने भी उन्हें प्रभावित किया, पर जल्दी ही वे इनके असर से निकल आए। अपने आपको टूटते हुए मध्य वर्ग का एक सदस्य मानकर, अपने बारे में 'उदिता' की भूमिका में उन्होंने लिखा - '..... एक तिनके का सहारा फिर सोशलिज़्म ही आड़े आया।' यह एक आकर्षक और उत्तेजक विचार था, जो पूरे व्यक्तित्व पर गहरा असर डालने की ताकत रखता था। इसीलिए शमशेर के लिए यह एक व्यक्तिगत और रचनात्मक अनिवार्यता बनकर सामने आया। मलयज ने अपने निबंध 'बात बोलेगी, पर कब?' में उन्हें उद्धृत किया है, '.....मार्क्सवाद मेरी ज़रूरत थी, सच्ची ज़रूरत, उसने मुझे मार्बिड और रुग्ण मनःस्थिति से, जिसमें कि मुझे डर था कि पड़ा रहकर मैं बिल्कुल डूब ही जाऊँगा, सपाट हो जाऊँगा, मुझे उबारा।' शमशेर ने कहा, 'वह (मार्क्सवाद) मेरी एक रूहानी ज़रूरत की पूर्ति करता था।' मार्क्स ने अपने अध्ययन में बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि मनुष्य दूसरे जानवरों से अलग और विशिष्ट इस अर्थ में है कि उसमें अपने आपसे बाहर निकलने की क्षमता है। वह अपने शरीर को बचाए रखने और अपनी प्रजाति में वृद्धि के काम के अलावा भी बहुत कुछ ऐसा करता है, जिसका इन ज़रूरतों से सीधे कोई संबंध नहीं है। उसके स्वभाव के इस पक्ष को, कठोर अर्थ में आवश्यकता के दायरे से बाहर सृजन की उसकी क्षमता और प्रवृत्ति को मार्क्स 'सौंदर्य' के नियमों से परिचालित मानते हैं। कला इसी क्षेत्र में पड़ती है। पूँजीवाद मनुष्य के इस अतिरिक्तपन को सीमित करता जाता है, उसके लिए अवसर घटाता जाता है और इसीलिए वह मानवीयता का पोषक नहीं रह जाता। मनुष्य के इस अतिरिक्तपन की रक्षा और उसका विकास एक मानवीय कार्यक्रम है और यह मार्क्सवाद के मूल में है। शमशेर के सामने भी सवाल यही था - '.....चारों ओर अबाध फैले जीवन की पूरी शक्तियों और सारे सौंदर्य को कलाकार मुक्त रूप से कैसे दर्शा सकेगा?' वे कहते हैं - 'यहीं से उठती है सच्चे प्रगतिशील साहित्य की बहस और उसकी जिम्मेदारियाँ।' जीवन की सारी शक्तियाँ, जिनमें मनुष्य की समस्त आंतरिक क्षमताएँ भी शामिल हैं, और चारों तरफ फैला हुआ सौंदर्य - यह है कलाकार का विचरण-क्षेत्र। समस्या इसकी मुक्त रूप से अभिव्यक्ति की है। मार्क्सवाद कला के लिए और कलाकारों के लिए इसीलिए महत्वपूर्ण हो उठता है कि वह कलाकार की इस समस्या को एक ठोस जीवन-यथार्थ की समस्या के रूप में उठाता है, कलाकार के संघर्ष को एक वास्तविक सामाजिक संघर्ष मानता है और इसे शेष सामाजिक प्रश्नों-संघर्ष के साथ जोड़ देता है। वह सुंदर को उपयोगी बनाने का उद्यम है।

अफसोस कि हिंदी के प्रगतिवादी आंदोलन ने इस बहस को एकांगी तरीके से उठाया, भले ही उसके तात्कालिक कारण रहे हों, जिन्हें रणनीति के लिहाज से सही भी ठहराया जाए, लेकिन शमशेर जैसे कलाकार ने मार्क्सवाद के मूल स्वप्न को पहचान लिया था, मनुष्य की सौंदर्य-चेतना से उसकी प्रतिबद्धता को समझ लिया था, इसलिए कम्युनिस्ट पार्टी से अलग होने के बाद भी, जीवन के बिल्कुल आखिरी सालों में उन्हें अपनी कला-चेतना और मार्क्सवादी चेतना में कोई अंतर्विरोध नहीं मालूम पड़ता था। उन्हें इस बात पर ताज्जुब होता था कि आलोचक उनमें किस तरह यह अंतर्विरोध देख लेते हैं। जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, हिंदी आलोचकों के बीच इसे लेकर कमोबेश सहमति है कि शमशेर का एक पक्ष मार्क्सवादी है, दूसरा नहीं। स्वाभाविक ही है कि मार्क्सवादी आलोचना उनके मार्क्सवादी पक्ष को तरजीह देना चाहे। डॉ. शिवकुमार मिश्र कहते हैं, 'सहज रूप से..... विचारधारा के स्तर पर जो रचनाएँ हैं, उनको हम ज्यादा स्थान देते हैं।' गैर-मार्क्सवादियों में तो यह धारणा बद्धमूल है, जैसा अज्ञेय, साही या दूसरों के लेखन से मालूम पड़ता है कि वे शमशेर के यहाँ मार्क्सवाद को हाशिए पर पाते हैं। दोनों तरह के विचारकों के साथ संकट यह है कि वे शमशेर के मार्क्सवाद का प्रमाण उनकी कविताओं के विषयों से ही खोजते हैं। चूँकि उनके यहाँ राजनीति, समाज को स्थूल रूप से विषय बनाकर लिखी गई कविताएँ कम मिलती हैं, इसलिए उनकी कला-दृष्टि और जीवन-दृष्टि में अनिवार्य असंगति मान ली जाती है। शमशेर के लिए मार्क्सवाद एक ज्यादा बड़ी ज़रूरत बनकर आया था। वह चारों तरफ बिखरे पड़े सौंदर्य की, जो हमें अपनी जकड़ी ज़िंदगी में उपयोगी नहीं जान पड़ता, सार्थकता बताता था। उनके लिए, उन्हीं के शब्दों में कहें तो, मार्क्सवाद 'सघनतम की आँख' बनकर उभरा। दूसरे शब्दों में उसने उन्हें ज्यादा व्यापक और गहन अर्थ में सौंदर्यवादी बनाया।

22.2.4 उर्दू कविता (ग़ज़ल) और शमशेर

सौंदर्यवाद और रीतिवाद में गहरा रिश्ता है। शमशेर के बारे में एक धारणा-सी प्रचलित हो गई है कि उन पर उर्दू की रीतिवादी कविता का गहरा असर था। डॉ.रामविलास शर्मा उनमें रूमानियत और रीतिवाद का संगम देखते हैं। रूप, रस, गंध के प्रति उनकी गहरी संवेदनशीलता को 'मोह' की संज्ञा देते हैं और बताते हैं कि हालांकि शमशेर ने पंत और निराला को विशेष रूप से पढ़ा, लेकिन 'इनका प्रभाव उनके रीतिवादी संस्कारों को निर्मूल नहीं कर सका।' शब्दों के माधुर्य, पूर्ण प्रकारात्मक न्यास तथा सुरुचिपूर्णता के प्रति उनके आग्रह को उर्दू ग़ज़लियत से जोड़ते हुए इसे भी उनके रीतिवादी रुझान का सबूत माना गया है। 'किस तरह आखिर मैं हिंदी में आया' शीर्षक निबंध में शमशेर लिखते हैं - 'ग़ज़ल मेरी भावुकता और आंतरिक अभावों की, अपने तौर पर, भली-बुरी एक मौन साथी थी।' शमशेर के लिए ग़ज़ल क्या है, यह बताने के लिए डॉ.रामविलास शर्मा ने उन्हें ही उद्धृत किया है, 'किसी अकेले खामोश गुल के बिखरते हुए रंग में विभोर होकर जीवन-सुख की बहार और खिजां के दर्द से परिपूर्ण हो उठना बस यही संकेत तो ग़ज़ल का एक शेर है।' यह जानना ज़रूरी है कि डॉ.शर्मा ने वाक्य अधूरा उद्धृत किया है। यह वाक्य शुरू इस प्रकार होता है, 'एक संकेत में समाज और मानव-हृदय और उसके अनंत की बातें कह-सा जाना, और उसमें कभी-कभी बीसवीं का भ्रम खोजने लगना, अपना इन सबसे दिल हटाकर.....,....' । इन पंक्तियों के बाद वाक्य का वह हिस्सा शुरू होता है, जिसका इस्तेमाल शमशेर की रूमानियत को सिद्ध करने के लिए डॉ.शर्मा ने किया है। कहने की ज़रूरत नहीं कि जब वाक्य को पूरेपन में एक-साथ पढ़ा जाता है, तो शमशेर के लिए ग़ज़ल क्या है, यह ज्यादा सही ढंग से स्पष्ट हो जाता है। कवि की निगाह में शायरी की खूबी यह है - '.....कुछ समझ-बूझकर बहकाना और बहक जाना - यही तो शायरी है।' इसमें बहकाने और बहक जाने को गुण बताना जितना अर्थपूर्ण है, उतना ही उसके आगे **समझ-बूझकर** लगाना सार्थक है।

उर्दू कविता, जिसने शमशेर के संस्कारों को ढाला है, एक रूपक में उनके सामने आती है, '...मर्माहता विषाद-नगरी दिल्ली की भोली-बालिका.....स्वर कुछ बचपन से ही करुण.....पर आज उसका यौवन-स्वर बहुत गंभीर बहुत कोमल तथा मधुर - किंतु बहुत गंभीर हो गया है।' उनके सामने उर्दू कविता का पूरा विकास है। वे उसकी उस विशिष्टता से परिचित हैं, जिसके

चलते वह महत्वपूर्ण है। 'उर्दू कविता' नामक लेख में इस विकासक्रम की छानबीन करते हुए वे आधुनिक उर्दू कविता के बारे में यह विचार व्यक्त करते हैं, 'युग-परिवर्तन के साथ-साथ सुसंस्कृत होकर ग़ज़ल में आज प्रत्येक विषय का समावेश हो गया है, किंतु है यह पूर्व-परिचित शृंगारिक लक्षण के आधार पर ही, चाहे वह नाम-मात्र को ही क्यों न हो, तथापि उसका संकेत-व्यापार उतना गूढ़ हो गया है और अनुभूतियाँ ऐसी सूक्ष्माभिव्यक्ति ढूँढती जान पड़ती हैं कि प्रत्येक विशिष्ट कवि एक प्रकार के आध्यात्मिक रंग में रंग गया-सा दिखाई पड़ता है।' शमशेर की निगाह में ग़ज़ल की परंपरा का महत्वपूर्ण पक्ष है - शब्द-संगठन और लोच, मुहावराबंदी और सफाई का महत्व बढ़ाकर क्लिष्टता से खुद को बचाना। दूसरी चीज़, जो उन्हें खींचती है, वह है इसकी शुद्धता और सुडौलपन और इसकी वह शोखी, जिसका कहीं कोई जवाब नहीं। डॉ. शर्मा का यह विचार है कि हिंदी में तो छायावादी काव्य ने रीतिवादी परंपरा को छिन्न-भिन्न कर दिया, लेकिन चूँकि उर्दू में रीतिवादी काव्य की जड़ें गहरी थीं, इसलिए वहाँ इतना व्यापक परिवतर्न नहीं हुआ। बीसवीं सदी में उर्दू गद्य और शायरी के विकास को जिसने भी ध्यान से समझा है, वह 1937 या 1938 में शमशेर द्वारा लिखे गए निबंध की इस बात से सहमत होगा कि हालांकि उर्दू कविता की पिछली शताब्दी का पूर्वार्द्ध रीतिकाल ही था, पर बाद की उर्दू कविता के भाव-संसार की सीमा 'गुल', 'बुलबुल', 'शमा', 'परवाना' आदि शब्दों के खूंटों से स्थिर करना इनके गूढ़ अर्थ-संकेतों की व्यापकता को समझने से इन्कार करना है।

उर्दू भाषा और उर्दू कविता से शमशेर के संबंध पर कुछ विस्तार से विचार करने का कारण यह है कि उनके कवि-संस्कार के निर्माण में इनका काफी योगदान है। शमशेर को उर्दू कविता किन वजहों से अपनी ओर खींचती है - यह जानना उचित ही होगा। डॉ. शर्मा ने 'अच्छे गद्य की पहचान' नामक लेख में लिखा है कि शमशेर जानते हैं कि उर्दू में रीतिवाद के अलावा बहुत कुछ है, फिर भी 'रीतिवाद उन्हें मोहता है।' ज़रा देखें कि उर्दू काव्य में क्या कुछ है, जो शमशेर को पसंद है। नवयुक इकबाल की **बेताली, जोश और तड़प, उसका स्वदेश-प्रेम, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए उसकी महत्वाकांक्षा, एकता और प्रेम की विश्वविजयिनी शक्ति और चमत्कार** - ये सब उन्हें खींचते हैं। इकबाल में शमशेर को 'प्रेम-साधना और आत्म-विश्वास और आत्म-ज्ञान का संदेश' सुनाई पड़ता है। 'उर्दू कवयित्रियाँ' शीर्षक निबंध में वे बताते हैं कि उर्दू शायरी में ये एकदम अपने निजी सुख-दुख के निजीपन को भुलाकर एक सामाजिक आदर्श पर हमारी भावनाओं को उठा ले जाती हैं, उसी का चित्रण हमें मिलता है.....। इस चित्रण में परोक्षता, संकेत-व्यापार आदि मुख्य हो गए हैं। लेकिन इससे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'उसमें क्या मानव-हृदय का स्वर मद्धिम हुआ?' शमशेर पर उर्दू कविता इस कारण से असर डालती है कि उसमें कला का अनुप्राणित करने वाला 'मनुष्य का निजत्व' स्वाभाविक रूप से मिलता है, विनष्ट अथवा अप्राप्य सुख के ध्यान की विह्वलता मिलती है, तो आनंद की शांति और मोक्ष के लिए उन्मन मनुष्य की शक्तियों की कार्य संलग्नता और गति का व्यक्त राग भी यहाँ सुनाई पड़ता है। उन्हें गालिब अपनी व्यापकता के केंद्र में एक बड़ा हीरो नज़र आता है तो इसलिए कि वह हर बात में अपने व्यक्तित्व को सामने रखता है। उन्हें गालिब को पढ़ते हुए यह देखकर हैरानी होती है कि 'उसमें आज के, आधुनिक साहित्यकार की-सी पूरी तड़प और वेदना के बीच एक तटस्थ यथार्थवादी दृष्टि है।' गालिब की दूसरी विशेषता, शमशेर के लिए, यह थी कि उनकी दिलचस्पी किसी प्रकार के आदर्शवाद में नहीं थी - 'थी तो केवल इंसान में। उसके विडम्बनापूर्ण मगर हौसलेमंद जीवंत नाटक में।' शमशेर ने अपने इस तरह के निबंधों में जो शेर उद्धृत किए हैं, उनसे उनकी पसंद और मोह का पता चलता है। वे उर्दू कविता के असर में थे तो इसलिए कि वह इंसान के विडम्बनापूर्ण मगर हौसलेमंद जीवंत नाटक की सूक्ष्माभिव्यक्ति थी, उसके रीतिवादी सौंदर्यवाद के चलते नहीं।

22.2.5 आत्म-सत्य बनाम समाज-सत्य

उर्दू कविता से शमशेर के घनिष्ठ संबंध और पाश्चात्य काव्य के प्रति उनके गहरे आकर्षण ने आलोचकों को प्रेरित किया है कि वे इनके बारे में अपनी बनी-बनाई धारणाओं के आधार पर शमशेर की काव्य-दृष्टि की परिभाषा करें। एक तरफ डॉ. रामविलास शर्मा उन पर आरोप लगाते हैं कि निराला से प्रभावित होने के बावजूद उनका मन पश्चिम के 'ह्रासमान कवियों' से बंधा

रहा तो दूसरी तरफ विजयदेव नारायण साही और मलयज जैसे विचारक उनके कुछ पश्चिमी कवियों का आदरपूर्ण उल्लेख देखकर उन्हें 'मलार्मीय विडम्बना' की कविता आदि कहकर अत्यंत ही मुग्ध हो उठते हैं। शमशेर ने 1937 में लिखे निबंध 'उर्दू कविता' में कहा है कि आज हमारे साहित्य का सवाल हो गया है, इसलिए हमारे काव्य की सृष्टि भी बंधे हुए तंग दायरों में नहीं बढ़ सकती। सच्चे कवि की उनकी कसौटी यह है कि वह 'संस्कृतियों की ठोस अनुभूति के द्वारा हमारे व्यापक जीवन के सत्य-सौंदर्य से हमारा परिचय कराने में सशक्त है या नहीं।' वे चाहते हैं कि उसकी कविता का स्पर्श हमारे भूत और भविष्य को नए अर्थ से गौरवान्वित करे और हमारे वर्तमान की आधारभूत प्रेरणाओं और लक्ष्यों को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि कवि का मुख्य धर्म है - भावनाओं के परिष्कार के द्वारा अनुभूतियों को गहरा करना और कुछ इस तरह अर्थपूर्ण बनाना कि घोर से घोर, एकाकी परिस्थिति में भी कवि को तो शांति मिले ही, उसके माध्यम से पाठक और पाठक-समुदाय को भी शांति मिले। यह शांति पलायन नहीं है। इसे बाद में शमशेर ने स्पष्ट किया है। कला से मिलने वाली शांति समाज और प्रकृति के साथ व्यक्ति के रिश्तों की सही समझदारी में है। यह इस बात से साफ होता है कि शमशेर के अनुसार आत्म-सत्य का अन्वेषण सच्चा कलाकार अपनी अनुभूतियों में नहीं, उनके मूलों में करता है, उन मूलों में जो उसके समाज और संस्कृति की परंपरा में बहुत गहरे चले गए हैं। इस तरह, कलाकार के आत्म-सत्य के बाहर वह समाज-सत्य नहीं है, जिसके मर्म को अपने आंतरिक संस्कारों में ढालने को वे कवि का काम समझते हैं।

समाज-सत्य, कलाकार के आत्म-सत्य और कलात्मक सत्य में गहराई से धंसे मूलों में आत्म-सत्य का अन्वेषण करके समाज-सत्य के मर्म को उद्घाटित करता है, उसी का धंधा है वस्तु और शिल्प के प्रयोग के द्वारा कलात्मक सत्य के यथार्थ को प्राप्त करना। शमशेर की व्याख्या करते हुए साही की नज़रों से यह सूत्र ओझल रहता है, तभी वे यह कह पाते हैं कि 'शमशेर का वक्तव्य है कि कविता में हम अपनी भावनाओं की सच्चाई खोजते हैं....तलाश की यह मुद्रा **वस्तुपरकता या सच्चाई की अनुपस्थिति** को मानकर चलती है।' (ज़ोर मेरा) सच्चाई की अनुपस्थिति? लेकिन शमशेर का तो मानना है कि 'कवि जिन सत्यों को उद्घाटित करता है, उनका वह अपनी अनुभूतियों में साक्षी होता है।' कोई भी रचनाकार उन्हें तभी सार्थक लगता है जब वह सामाजिक चिंता, युग की झांकी और हमारी समस्याओं के किसी न किसी रूप को प्रस्तुत करे। वे कविता को 'जीवन के जीवित संदर्भों से संयुक्त' मानते हैं इसलिए संघर्ष के इलाके को रचनाकार की ऊर्जा भूमि के रूप में ग्रहण करते हैं। लेकिन बारंबार कविता की सामाजिकता और यथार्थवाद पर ज़ोर डालते हुए भी वे प्रगतिवादी दौर की प्रचलित कला-दृष्टि से अर्थपूर्ण ढंग से अलग होते हुए यह विचार व्यक्त करते हैं - 'कला की अभिव्यक्ति व्यक्ति और समाज की आशाओं-आकांक्षों और क्षणिक समर्थताओं का एक सजीव और गतिशील दर्पण है।' यहाँ क्षणिक पर जितना ध्यान देना चाहिए, उतना ही दर्पण के सजीव और गतिशील होने पर भी। शमशेर के लिए यह दर्पण बड़ा महत्वपूर्ण है, लेकिन उनके यहाँ यह कभी भी स्थिर, किसी चौखटे में बंद नहीं मिला, हमेशा गति से भरा हुआ दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकार, कला जिस यथार्थ को प्रस्तुत करती है, वह भी एक संश्लिष्ट अवधारणा है। शमशेर के लिए 'यथार्थ वह सब कुछ है जो मनुष्य के जीवन में घटित और अनुभूत होता है। मनुष्य के स्वप्न, योजनाएँ, उसके समस्त कार्यकलाप, संघर्ष, आंदोलन, क्रांतियाँ, उसका सारा व्यक्तिगत और सामूहिक इतिहास.....यथार्थ है। मनुष्य की कल्पनाएँ भी उसके मानसिक जीवन का यथार्थ है।' कविता इस संपूर्ण यथार्थ को व्यक्त करने का दायित्व लेकर चलती है।

22.2.6 सामाजिकता और यथार्थवाद

'पूर्वग्रह' में प्रकाशित नेमिचंद जैन और मलयज के साथ अपनी बातचीत में शमशेर ने कहा कि 'प्रगतिशील किस्म की पत्रिकाओं ने कभी परवाह नहीं की मेरी कविताओं की आम तौर से।' जब वे खास विषयों पर लिखते थे, तब इन पत्रिकाओं को उत्साह होता था। परेशानी यह थी कि ये खास विषय, जिन्हें सरलीकृत अंदाज़ में सामाजिक या राजनीतिक (डॉ.शिव कुमार मिश्र के शब्दों में 'विचारधारात्मक') कहा जा सकता था उनकी मौलिक विषय-वस्तु के दायरे में उस तरह नहीं आते थे, जिस तरह नागार्जुन, रामविलास शर्मा या केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ।

उनके लिए मुख्य रूप से आत्माभिव्यक्ति का दायरा बड़ा ही व्यापक था, कुछ वैसे ही जैसे सामाजिक यथार्थ मात्र बाहर दिखलाई पड़ रही घटनाओं और परिवर्तनों के अलावा ज्यादा गहराई लिए हुए था।

ऊपर उनके यथार्थ की परिभाषा हम देख चुके हैं। कला के क्षेत्र में यथार्थ और अयथार्थ के झगड़े को वे व्यर्थ मानते थे, यह 'अमूर्त कला' शीर्षक उनके निबंध से पता लगता है जिसमें वे कहते हैं कि महत्वपूर्ण सिर्फ यह है कि 'कलाकार अपने विषय के अंदर किन तत्वों, किन विशेषताओं को दिखाना चाहता है और वह उन्हें कहाँ तक दिखाने में सफल होता है।' कलाकृति का मूल्य इस पर निर्भर करता है कि वह किसी अनुभूति को कितनी सच्चाई और सफलता से व्यक्त करती है। इसलिए किसी शैली-विशेष को किसी दूसरी शैली के मुकाबले तरजीह नहीं दी जा सकती। शमशेर यह समझते थे कि कला का क्षेत्र अपने-आप में अलग ज़रूर है और यह मूलतः वस्तु और शिल्प के प्रयोग का क्षेत्र है। वे इस बात को भी अच्छी तरह समझते थे कि कलाकार जिस चीज़ को व्यक्त करना चाहता है, 'वह जाहिरी रूप-रेखा नहीं है बल्कि वह कलात्मक रूप है जो कलाकार स्वयं अपने पर्दे में महसूस करता है।' इसलिए रूप और शिल्प और शैली या टेकनीक का अभ्यास कलाकार के लिए आवश्यक ही नहीं होता, वह तो उसकी प्राथमिकता बन जाता है। नहीं तो वह किसी समाजशास्त्री, वैज्ञानिक, राजनीतिक चिंतक से अलग किस रूप में है? बचपन से ही अंग्रेज़ी, उर्दू, बंगला, हिंदी आदि के माध्यम से बिल्कुल अलग-अलग शिल्प या शैली और टेकनीक का प्रयोग करने वाले कवियों ने शमशेर को इसी वजह से प्रभावित किया कि उनमें उन्हें वे नियम मिलते थे, जिनका विकास इन कवियों ने अपनी कलात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए खुद किया था। इस तरह उनकी सफलता-असफलता और उनके प्रयोगों की सार्थकता की परीक्षा करते हुए शमशेर स्वयं अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे क्योंकि कला जितना प्रतिभा का मामला है, कहीं उससे ज्यादा अभ्यास या 'मश्क' का भी है।

कला संबंधी अपने इसी रवैये के चलते वे कविता पर विचार करते समय यथार्थवादी, अयथार्थवादी जैसी कोटियों में विभाजन को मुनासिब नहीं मानते, हालांकि आरंभिक काल में वे भी अलग-अलग कवियों के लिए 'स्वस्थ' और 'अस्वस्थ' जैसे विशेषणों का प्रयोग करते थे। साथ ही 'प्रगतिशील' रचनाओं के उलट 'पतनशील' रचनाओं का भी उनके दिमाग में अस्तित्व था। इलियट, पाउंड, रशिद, फैज, मूर, पैचन आदि के प्रति अपने आकर्षण को वे स्वीकार करते हैं, इसलिए कि इन्होंने जीवन के रोग-शोक, आत्मा की हाय, दैन्य, पराजय, भ्रम, क्रूरता आदि को उघाड़ कर रख दिया है, लेकिन इसके साथ ही वे यह कहना भी ज़रूरी समझते हैं कि इस आकर्षण के बावजूद इनमें कुछ है जिसके विरूद्ध 'मेरा स्वस्थ मन विद्रोह करता है।' डॉ. शर्मा ने उनकी इस स्वीकारोक्ति को अपने इस निष्कर्ष को पुष्ट करने के लिए उद्धृत किया है कि संस्कार शमशेर के अस्वस्थ थे, विवेक उन्हें इससे दूर हटाता था। 1952 में लिखे अपने इस निबंध की इन पंक्तियों के संदर्भ में बाद में शमशेर ने एक नोट लगाया - 'सन' 52 में मैं जैसा कुछ देखता-समझता था, वह बहुत कुछ या काफी कुछ भ्रम भी था, और साहित्यिक समझ की कमी।' यानी ऐसे सारे कवियों की अपनी विशिष्टता है, वे एक विशेष कलात्मक सत्य की अभिव्यक्ति हैं, उन्हें महत्व देने में अस्वस्थ होने का अपराध-बोध सही नहीं है। बल्कि ऐसा अपराध-बोध साहित्य समझ की कमी का सूचक है। 'एक बिल्कुल पर्सनल एसे' शमशेर का एक दिलचस्प निबंध है। इसमें वे 'अनाम' नामक एक कवि की कल्पना की मौलिक उड़ान, उसका घोर सोफिस्टकेशन, विचित्र व्यंग्य और खास प्रयोग जैसे गुणों के चलते उसके प्रति अपनी पसंद ज़ाहिर करते हैं, पर तुरंत नरेश मेहता से उसकी तुलना करके नरेश को ज्यादा 'स्वस्थ' मानते हैं। यह सारी बातचीत 'अनाम' से ही हो रही है। इसके ठीक बाद ज़रा-सी आँख दबाकर 'अनाम' शमशेर से पूछते हैं कि यह स्वस्थ और अस्वस्थ क्या चीज़ हुई! 'अनाम' द्वारा व्यंग्यपूर्वक किए गए इस सवाल के ज़िक्र से मालूम पड़ता है कि कला में 'स्वस्थ' और 'अस्वस्थ' के विभाजन को उस वक्त शमशेर भले ही स्वीकार कर रहे हों, लेकिन इसके औचित्य को लेकर उन्हें संशय तब भी था।

'स्वस्थ' और 'अस्वस्थ' तथा 'प्रगतिशील' और 'पतनशील' को कला-चिंतन और विश्लेषण में निर्णायक शब्दों का दर्जा भारत में ही नहीं, पश्चिम में भी मिला हुआ था। इस हिसाब से कामू, काफ्का, दोस्तोव्स्की, बेकेट, अख्मातोवा आदि को अस्वस्थ और पतनशील घोषित करके अवांछित तत्वों के रूप में प्रचारित किया गया था। ज्याँ पाल सार्त्र ने एक विचार-विमर्श में भाग लेते हुए बड़े ही आग्रहपूर्ण ढंग से निवेदन किया था कि कला-साहित्य पर बात करते समय इन शब्दों का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए। भारत में और हिंदी में निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि मार्क्सवादियों में सबसे पहले इस ओर शमशेर ने ध्यान दिलाया। दूसरे व्यक्ति थे - मुक्तिबोध, जो काव्य-विवेचना की अपनी भाषा विकसित करने का आग्रह कर रहे थे और मात्र समाजशास्त्रीय अवधारणाओं की कसौटी पर कवियों के गुण-दोष परीक्षण को गलत कह रहे थे। आगे चलकर मार्क्सवादियों के कला-साहित्य संबंधी विचारों में भी जो एक संतुलन-सा दिखलाई देता है, उसके पीछे मुक्तिबोध और शमशेर का जीवट भरा संघर्ष चल रहा है। मुक्तिबोध ने इस वाद-विवाद में गहरे धंसकर सैद्धांतिक स्तर पर कड़ी लड़ाई की, शमशेर बिल्कुल अपने ढंग की कविता लिखना जारी रखते हुए और अपने आत्माभिव्यक्ति वाले अंदाज़ के महत्व पर ज़ोर देते हुए यह काम कर रहे थे।

22.2.7 कला और सामाजिक दायित्व

कला या कविता के दायित्व और उसके कार्य-क्षेत्र को लेकर चलने वाले वाद-विवाद में शमशेर शुरू से अंत तक इस मत के बने रहे कि "जनता के प्रति जो दायित्व है उसे कवि को नहीं भूलना चाहिए। लेकिन जनता के प्रति दायित्व के लिए कठोरता से कार्यक्रम नहीं बनाया जा सकता।" कला के सामाजिक दायित्व-निर्वाह का यह मसला उन्हें शुरू से परेशान करता रहा था। कारण यह था कि खुद उन्हें नागार्जुन, केदार, सुमन, दिनकर आदि के मुकाबले समाज के लिए उपयोगी नहीं पाया गया था। अपने संग्रहों की भूमिकाओं में या अन्यत्र यह कहकर कि उनकी रचनाएँ सामाजिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है, भले ही शमशेर ने इस प्रचलित धारणा को कुछ बल पहुँचाया हो, लेकिन इससे यह समझना गलत होगा कि कला की सामाजिक उपयोगिता की सरलीकृत अवधारणा को उन्होंने स्वीकार कर लिया था। वे यह मानते रहे कि 'एक बड़ा रचनाकार अंततः जनता की ही सेवा करता है।' विश्व-साहित्य के व्यापक और गहन अध्ययन ने उन्हें यह मत स्थिर करने की ओर प्रेरित किया था कि विषय कुछ भी हो, यदि रचनाकार खरा है तो वह मानवीय संवेदना का संस्कार ही करता है। इसी प्रकार वह उपयोगी हो सकती है। अच्छी कविता उनके लिए वह थी जो विचार ही नहीं, कविता का आनंद, रस और गहरी काव्यानुभूति भी प्रदान करे। ऐसी कविता वे ही लिखते हैं, जिनमें समकालीन नाना परिस्थितियों के प्रति नैसर्गिक संवेदना हो, जो खुद को इन परिस्थितियों में कहीं न कहीं बौद्धिक, नैतिक या आध्यात्मिक रूप से गहराई से जुड़ा हुआ महसूस करते हों, जिनमें अभिव्यक्ति की अनिवार्यता तो हो ही, उसमें विशेष बल या ज़ोर भी हो। इन गुणों से युक्त कवि जब भी रचना करते हैं तो वे हमारे चारों ओर बिखरे पड़े सौंदर्य से बेखबर हमारे मन को उसके किसी न किसी पक्ष की तरफ मोड़ने में सफल होते हैं। इस तरह वे अपने तरीके से उस माहौल का मुकाबला करने को तैयार करते हैं जो हमारे सोचने-विचारने की ताकत को कुंद करने से पहले हमारी इंद्रियों की संवेदन-क्षमता को सीमित करता है। शमशेर के लिए कविता या कला का काम, दुनिया में, समाज में जो कुछ घट रहा है, उसे अभिव्यक्त करना भर नहीं है। इस रूप में तो बाकी दुनियावी कामों के मुकाबले उसका दर्जा दोयम ठहरता है। पर शमशेर उसे यह हीन पद देने को तैयार नहीं। कविता जीवन-व्यापार की अभिव्यक्ति मात्र नहीं, वह स्वयं एक जीवन-व्यापार है।' 'चुका भी हूँ मैं नहीं' की भूमिका का अंत उन्होंने इस सार्थक वाक्य से किया है जो कविता की उपयोगिता को एक नए अंदाज़ में चिह्नित करता है - 'काव्य-कला समेत जीवन के सारे व्यापार एक लीला ही हैं - और यह लीला मनुष्य के सामाजिक जीवन के उत्कर्ष के लिए निरंतर सघर्ष की ही लीला है।' इसलिए उन्हें यह कहने में कोई हिचक नहीं कि कला का संघर्ष समाज के संघर्षों से अलग कोई चीज़ नहीं हो सकती।

22.3 सारांश

शमशेर आधुनिक दौर के सबसे जटिल कवि माने जाते हैं। इसका कारण कविता को समझने की पाठक/आलोचक की वह पारंपरिक धारणा रही है जिसके चलते रचनाकार के विचारों को उसकी रचना पर आरोपित करके उसे समझने की कोशिश चलती रही है। शमशेर इस प्रक्रिया से नहीं समझे जा सकते। ठोस सामाजिक वस्तु के आधार पर भी रचनाकारों को समझा जाता है। शमशेर यहाँ भी नहीं अटते।

शमशेर के लिए मार्क्सवाद जीवन व्यवहार, व्यक्तित्व निर्माण की आधारभूत सामग्री है। मार्क्सवाद और भाव-बोध को लेकर शमशेर में द्वंद्व चलता रहा है। भावुकता को शमशेर खारिज नहीं करते, उसे गौरव प्रदान करते हैं। वे मानते हैं कि कला उस यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति है जो मनुष्य के जीवन में घटित और अनुभूत होता है। मनुष्य के स्वप्न, योजनाएँ, उसके समस्त कार्यकलाप, संघर्ष, आंदोलन, क्रांतियाँ, उसका सारा व्यक्तिगत और सामूहिक इतिहास - यथार्थ है। मनुष्य की कल्पनाएँ भी उसके मानसिक जीवन का यथार्थ है। यथार्थ की इस कलात्मक अभिव्यक्ति में शमशेर मानते हैं कि कला, टेकनीक, शैली की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। और किसी रचना को इस आधार पर नहीं कि उसमें क्या कहा गया है बल्कि इस आधार पर समझना चाहिए कि उसमें जो कुछ कहा गया है वह कलात्मकता की कसौटी पर कितना खरा है। वरना, शमशेर के अनुसार एक समाजविज्ञानी और कलाकार में क्या अंतर है।

अंत में कहें तो कह सकते हैं कि शमशेर साहित्य और कला की दुनिया के सिद्धहस्त कलाकार हैं जिन्हें समझने और जानने के लिए हमें पारंपरिक रुचि/अरुचि छोड़कर नए ढंग से देखना होगा।

22.4 प्रश्न

1. शमशेर काव्य की विचारभूमि क्या है?
2. विवेक और भावबोध का द्वंद्व शमशेर में किस प्रकार का है?
3. कला के बारे में शमशेर के विचारों की व्याख्या कीजिए।
4. शमशेर काव्य आलोचकों/पाठकों के लिए क्यों जटिल नज़र आते हैं?
5. शमशेर के काव्य में सामाजिकता और यथार्थवाद का क्या रूप उभर कर आता है?
6. शमशेर के काव्य का मूल भाव क्या है?

इकाई 23 शमशेर का काव्य : संवेदना और शिल्प

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 शमशेर के काव्य की संवेदना के आयाम
  23.2.1 कला दृष्टि
  23.2.2 निज भाव की कविताएँ
  23.2.3 मनुष्य और समाज
  23.2.4 प्रकृति
  23.2.5 प्रेम और सौंदर्य
23.3 शमशेर की कविता : आशंसा के आयाम
23.4 सारांश
23.5 प्रश्न

23.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- शमशेर की काव्य संवेदना के विभिन्न आयामों को रेखांकित कर पाएँगे,
- देख पाएँगे कि शमशेर की निजभाव की कविताओं की क्या विशेषताएँ हैं और ऐसी कविताओं में क्यों उनका मन रमता है,
- मनुष्य, समाज, प्रकृति तथा प्रेम-सौंदर्य शमशेर की कविताओं में किस रूप में और किस नज़रिये से व्यक्त होते हैं, इसे भी समझ सकेंगे,

23.1 प्रस्तावना

काव्य के मानवीय, सामाजिक सरोकार कैसे भी हों, काव्य का अंतिम लक्ष्य कला सृष्टि है, सौंदर्य का संधान करना है। काव्य जीवन का प्रतिबिंब नहीं है, कलात्मक पुनः प्रस्तुति है। दूसरी बात है - विषय विशेष से कोई रचना घटिया या बेहतर नहीं बनती। विषय कोई भी हो, कलाकार जब तक उसके प्रति संवेदित होकर सर्जना की भट्टी में उसे तपा कर कला रचना नहीं बना देता, वह कला नहीं बनती। शमशेर एक ऐसे कवि हैं जो जब तक किसी रचना को कलात्मक रूप से पूरा साध नहीं लेते, तब तक उन्हें संतोष नहीं मिलता। और कलात्मक रूप से रचना को साधने की यह प्रक्रिया शमशेर में बड़े गुपचुप ढंग से, और बहुत धीमी गति से चलती है। शमशेर चित्रकार हैं, संगीत का उन्हें ज्ञान है, बहुत अध्ययनशील हैं किंतु जीवन में बेतरतीब भी हैं। चित्रकला, संगीत और काव्य तीनों का माध्यम शमशेर की रचना-प्रक्रिया में घुलमिल कर जिस रचना का संधान करते हैं, वह आलोचकों के लिए समस्या बनी हुई है। कोई उन पर कलावादी होने का आरोप चंस्पा कर रहा है और कोई उन्हें मार्क्सवादी सिद्ध करने में लगा है। बने-बनाये इन साँचों से हट कर यदि शमशेर को समझने की कोशिश की जाए, शमशेर की कला मान्यताओं को ध्यान में रखा जाए तो इनका रचना संसार, कला और सौंदर्य की जिन ऊँचाईयों पर खुलता है वह स्पृहणीय है। शमशेर बहुत अंतर्मुखी हैं, कला के लिए जीवन के व्यापक सामाजिक सरोकारबाकी प्रगतिशील कवियों की तरह उनकी रचना के सरोकार नहीं बनते। यह उनकी दिशा नहीं है। प्रेम, सौंदर्य, मनुष्य के सुख-दुख, प्रकृति उनकी रचना के आलंबन बनते हैं। इनके माध्यम से वर्तमान मनुष्य की जीवनगाथा के जिन पक्षों को वे छूते हैं, वे अद्‌भुत ढंग से रचना में आलोकित हो उठते हैं।

शमशेर को पढ़ना एक नए ढंग के अनुभव से गुज़रना है। तो आइये, शमशेर के काव्य की संवेदना के विभिन्न आयामां को देखें।

23.2 शमशेर के काव्य की संवेदना के आयाम

23.2.1 कला-दृष्टि

शमशेर को सौंदर्य का कवि माना गया है। विजयदेव नारायण साही ने लिखा है कि अगर उनकी सारी कविताओं के शीर्षक हटाकर उन पर एक ही शीर्षक लगा दिया जाए - सौंदर्य, तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। 'दूसरा सप्तक' के वक्तत्व में शमशेर ने कहा कि सुंदरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। इसके ठीक पहले का वाक्य है, "हम-आप ही अगर अपने दिल और नज़र का दायरा तंग न कर लें तो देखेंगे कि हम - सबकी मिलीजुली ज़िदगी में कला के रूपों का ख़जाना हर तरफ बेहिसाब बिखरा चला गया है।" यह स्पष्ट है कि चारों ओर हर पल होने वाला सुंदरता का अवतार ही कला के रूपों का खजाना है। 'मैं एक कहानी लेखक हूँ' में लेखक कहता है, "... मुझे वह पचड़ेवाली दुनिया - जब मैं उसको अपने से ज़रा दूरी पर रखकर देखता हूँ - रंगीन और सुंदर दिखाई देती है। उसका एक-एक काम। उसके एक-एक भाव, एक-एक संकेत। प्रत्येक उलझाव। पांसे-जाल-संबंध ... उसकी हँसी-खुशी और रोना-गाना-यह सब राग-रंग ...।" कोई रचनाकार जब जीवन-व्यापार को देखता है तो उसे हर जगह एक सौंदर्यात्मक पैटर्न नज़र आता है। एक अत्यंत ही कल्पनाशील 'डिज़ाइन' पेड़-पौधों, लोगों के चेहरों, उनके शरीर, चलने-फिरने आदि तक में अपने लिए कोई-न-कोई 'डिज़ाइन' खोज लेता है। अगर ऐसा न होता तो एक समय के बाद नई 'डिज़ाइनों' का आविष्कार रुक जाता। उसी तरह शमशेर को जीवन की हर एक हलचल में, हरकत में किसी एक नए कला-रूप की संभावना नज़र आ जाती है।

कविता लिखने के साथ-साथ शमशेर चित्र भी बनाते थे। दिल्ली में जब वे 'उकील आर्ट स्कूल' में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे, तब की अपनी रूटीन के बारे में लिखते हैं, "... हर चीज़ और हर चेहरे को बगौर देखता कि उसमें अपनी ड्राइंग के लिए क्या तत्व खोज सकता हूँ ...। उस खोज़ का, हर चीज़, और चेहरे और दृश्य या स्थिति और गति का, अपना विशिष्ट आकर्षण कम न होता था।" कहा जा सकता है कि कलाकार का नज़रिया 'सौंदर्यात्मक' ही हो सकता है और कुछ नहीं, भले ही वह राजनीतिक मसले पर लिख रहा हो या किसी चेहरे की खूबसूरती आंक रहा हो। हम पहले शमशेर का वह कथन देख चुके हैं कि कलाकार किसी जाहिरी रूप को अभिव्यक्त नहीं करता, वह उसके कलात्मक रूप को अभिव्यक्त करता है। यथार्थ रूप को कलात्मक रूप में तब्दील करने के लिए कवि का सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण ही मध्यस्थ की भूमिका अदा करता है। उनका यह रवैया समझना ज़रूरी है, नहीं तो इस तरह के सरलीकृत निष्कर्षों पर पहुँचना आसान होगा कि वे हर चीज़, हर घटना, हर भाव को खुशनुमा बना देते हैं या उनका दिल खुशनुमा दुनिया में ही रमता, या फिर साही की तरह हम उनकी हर कविता के ऊपर 'सौंदर्य' शीर्षक चिपकाकर उन सबकी अलग-अलग विषय वस्तु, उनमें व्यक्त अलग-अलग मनोभावों पर पटरा फेरते हुए उन्हें सौंदर्यवादी करार देंगे।

23.2.2 निज भाव की कविताएँ

मुक्तिबोध ने शमशेर को मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी मानते हुए भी आत्मपरक कवि कहा है। अपनी आरंभिक कविताओं के संग्रह 'उदिता' में (जो बहुत बाद में छपा) शमशेर ने कहा था कि वे उस पाठक का ख्याल रखकर लिखते हैं, जो उनकी हँसी-खुशी और दुख-दर्द की आवाज़ सुनता और समझता है। वे लिखते हैं कि ऐसे पाठक के सामने "मैंने अपनी बातों को खास अपने लहज़े में खास अपने मन के रंग में, अपनी लय, अपने सुर में, खोलकर, एक ख्वाब की तरह, एक उलझी हुई याद के बहुत अपने छायाचित्र की तरह, रखने की कोशिश की है।" लेकिन शमशेर का अपना खास लहज़ा, उनका अपना खास रंग शुरू-शुरू में

'प्रभुत्वशाली छायावादी स्वर के नीचे दबा हुआ-सा लगता है। 'सहन्-सहन् बहता है वायु' की ये पंक्तियाँ देखिए :

रह जाते हैं सिहर-सिहर
मृदु कलिका के विस्मित गात :
बहका फिरता मधुप अधीर,
तितली अस्थिर गति अवदात।

या फिर इसका यह अंत कोई अपने सुख-दुख भूल/ सूने पथ पर राग-विहीन/ विस्मृति के बिखराता फूल/ फिर आया है मूक-मलीन।' न सिर्फ शब्दों के चुनाव में, बल्कि पूरे अंदाज़ में छायावादी प्रभाव गहरा दिखाई देता है। हालाँकि पेड़-पौधों के बीच से गुज़रती हवा को लेकर कवि ने एक सुंदर चित्र खींचा है, लेकिन 'क्षितिज-दुकूल हेरती' हुई 'स्वप्निल श्वेत छाया' कुहरे में ही छिपी हुई है।

उसी तरह 'सहज स्नेह का भूषण केवल' में किया गया यह प्रश्न भी छायावादी कवि का ही है, 'सहसा आ सम्मुख चुपचाप/ सन्ध्या की प्रतिमा-सी मौन/ करती प्रेमालाप, परिचिता-सी वह कौन?' यहाँ भी स्नेह-प्रतीति धूमिल-सी ही है। कविता का अंत इस प्रकार होता है :

मेरे अंतर में भर जाती
केवल अपना करुणा-राग :
वह अजान सुलगाती
क्यों नव यौवन में अबोध वैराग?

यहाँ भी छायावादी परिपाटी का निर्वाह मात्र दिखलाई पड़ता है, इस प्रश्न में कवि की अपनी व्यग्रता कहीं बहुत नीचे दबी हुई है।' नव कवि का आह्वान' में इस जीवन और संसार को लेकर एक ललक दिखाई पड़ती है, जैसे इन पंक्तियों को देखिए :

पागल कवि शिशु, केलि-विभोर
कूद-कूद कर द्वंद्व मचाता
सब देवों को मुकुर दिखाता
यह अनन्त चिर-विस्मय में खो जाता।

इस कविता में ध्यान देने योग्य है इस भौतिक जीवन के प्रति तीव्र आकर्षण : 'आह, प्रेम धन! वह आनंद नहीं है।/ जोगी हो जाने में/ जो कुछ खोकर पा जाने में/ अपने अंदर ही है।' नए-नए बादलों को देखकर जो उछाह होता है, उसके चलते ही कवि उस अंतःद्वार को खोलने का आह्वान करता है, जिसके अंदर युगों का धुंआधार पावस' घुटा हुआ है। यह ऐसी भीतरी दुनिया है, जहाँ सृष्टि-सृष्टि का वैभव बरस रहा है और 'व्योम-व्योम के वक्ष' टूटे पड़ रहे हैं। इस कविता की विशिष्टता नए बादलों के रस से भीगती दुनिया के उस कोने की तरफ इशारे में है:

'वह कोना खाली है, देखो, देखो।'
सिर पर है स्मृतियों के दल के दल।

छायावादी शब्दों के बाहुल्य के बावजूद इसमें एक नयापन है। इसी रंग में रंगी हुई है उनकी 'मैं भारत-गुण-गौरव गाता' शीर्षक कविता, जिसमें उन्होंने भारत की वंदना की है। इस राष्ट्र-वंदना में कोई नई ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। ध्यान देने योग्य है तो सिर्फ़ यह चीज़ कि भारत को सारी दुनिया से न्यारा दिखाने की कोशिश नहीं है। इस कविता में राष्ट्रवादी आक्रामकता भी नहीं है। ऐसे भारत को माथा झुकाया गया है, जो 'भविष्य का प्रेम-सूत' है। वैसे, राष्ट्र को लेकर आक्रामकता या उत्तेजना शमशेर में प्रायः नहीं दिखलाई देती। 'इकबाल की कविता' शीर्षक लेख में उन्होंने समर्थनपूर्वक कहा है कि पश्चिमी आदर्शों से अनुप्रमाणित देशभक्ति भी जीवन

की सच्ची महान् प्रेरणाओं को एक संकुचित सीमा में परतंत्र कर देती है। लगता है इसी धारणा की वजह से शमशेर के यहाँ उग्र राष्ट्रभक्ति के उद्‌बोधनात्मक गीत नहीं मिलते।

अपने ऊपर निराला और पंत के गहरे प्रभाव की चर्चा शमशेर ने एकाधिक बार की है, बल्कि हिंदी की ओर अपने खिंचने की एक बड़ी वजह वे इन्हीं दोनों कवियों को मानते हैं। लेकिन उनके संग्रहों में ऐसी प्रभाववाली कविताएँ कम हैं। 1934 के बाद 1936 तक उनकी कोई कविता संग्रहों में नहीं मिलती। इसकी वजह यह है कि वे इस दरम्यान दिल्ली में चित्रकला का प्रशिक्षण ले रहे थे, अंग्रेज़ी और उर्दू में लिखते भी रहे थे। पत्नी की मृत्यु के बाद जीवन में गहरे हो गए अकेलेपन में हिंदी कविता शमशेर से छूट-सी गई थी। बच्चन के प्रति लगाव महसूस करने का एक कारण यह भी था कि वे भी पत्नी विहीन हो गए थे। दिल्ली से देहरादून लौटने के बाद ससुराल में दवा की दुकान संभालते हुए बच्चन ने उन्हें देखा और खींचकर इलाहाबाद ले आए। वे ले तो गए थे उन्हें इसलिए कि वहां से एम.ए. करके सांसारिक आवश्यकताओं को पूरा करने लायक बन सकें। पर इलाहाबाद पहुंचकर उन्हें एक ही बात समझ में आई कि उनको अब हिंदी कविता गंभीरता से लिखनी है, जिससे उनका संपर्क बिल्कुल छूट चुका था। भाषा और शिल्प भी अजनबी-से हो गए थे। इस दौर के बारे में उन्होंने लिखा है, " ... सन् 37 में मेरा हाल यह था, जैसे मैं फिर से तैरना सीख रहा हूँ - तीन सालों में बहुत कुछ भुला देने के बाद" यह स्वाभाविक ही था कि 'निशा-निमंत्रण' की कविताओं ने उन पर जबर्दस्त असर डाला। उनके 'रूप-प्रकार' ने भी उन्हें आकृष्ट किया और उस तर्ज़ पर कुछ अभ्यास भी उन्होंने किया। 'निशा-निमंत्रण के कवि से 'नामक कविता में इस आकर्षण का कारण शमशेर ने यों बताया है :

यह खंडहर की साँस
तुम जिसे भर रहे हो वंशी में-
है तंग घुटी-सी सुबह
लाल सफेद सियाह!

इन पंक्तियों में ध्यान देने योग्य है 'खंडहर की साँस', 'तंग घुटी-सी सुबह' जो 'लाल सफेद सियाह' है। ये शब्द बच्चन की कविता के बारे में जितना बताते हैं, उससे कम खुद शमशेर की मनोभूमि का परिचय नहीं देते। कविता के अंत में एक भयानक बेचैनी की अभिव्यक्ति है : "मत गाओ यह गीत/ मैं बिखर पड़ूँगा पागलपन में/ ओ देर अजान मुसाफिर/ यह हँसी मरुस्थल की है।" 'मरुस्थल की हँसी' के विषण्ण भाव में छायावादी गीलापन नहीं है।

उत्तर छायावादी कविता का वह स्वर, जो 'निशा-निमंत्रण' में अभिव्यक्त हुआ था, शमशेर को अपने करीब लगता था। अक्सर हिंदी आलोचना में इस दौर को मस्ती, फक्कड़पन, बेपरवाही, अर्थात् अबौद्धिकता और अगंभीरता से भरा हुआ माना गया है। लेकिन इस युग की कविता में जो सशक्त स्वर है, उसमें मस्ती, फक्कड़पन से ज्यादा एक बेचैनी दिखाई पड़ती है। डॉ. नामवर सिंह ने एक भाषण में ठीक ही कहा था कि मजाज की पंक्ति 'ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं' से इस व्यग्रता का ठीक-ठीक अंदाज़ मिलता है। यह दौर व्यक्तित्व के निजी धरातल की एक नई ढंग की खोज का, और उसमें महसूस होने वाले सुख-दुख की खासियत को नया महत्व देने का भी है। छायावाद में व्यक्त भावनाओं में सामान्यीकरण-सा हो गया लगता था, उससे मुक्त होकर अपने-अपने रंग को पाने की तड़प-सी इस युग के कवियों में दिखाई पड़ती है।

शमशेर उत्तरछायावादी काव्य में यहाँ से वहाँ तक मौजूद तड़प और चुभन के साथ अपनापन महसूस करते हैं, यह उस समय की उनकी कविताओं से भी परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से उनकी 'आज हृदय भर-भर आता है', 'ज्योति', 'कवि-कला का फूल हूँ मैं' जैसी कविताओं से ही नहीं, 'वाणी' जैसी कविता में भी इस दौर के सुर में उनका सुर मिलता हुआ नज़र आता है। 'क्षार का उन्मत्त वैभव/ लाल कर आशा लहू से/ एक स्वर-करवाल-ज्वाला से/ हृदय को

फूँकता हूँ/ सान्ध्य-जीवन के ज्वलित कंदील-उर की तूल हूँ मैं' (कवि कला) या 'पथ नदियों के मोड़े होंगे। देश-देश तरसाया होगा। विकल सहस्र मीन-सा तब तो/ यह पानी मन पाया होगा। ' आज हृदय और 'कर्म कठोर बनेगा मन/ बरसेगा घिर कर गुरुधन/ विहर-विहर कर वन-वन पानी/ वन-वन देश घिरकर/ घन बरसाएगा पानी।' (वाणी) जैसी पंक्तियों से कवि की क्षमता का पता तो चलता है, पर वह किस तरह अपने समकालीनों में खास है, यह नहीं मालूम पड़ता। अकेलेपन की चुभन और तड़प के साथ ही सर उठाता आशा का भाव भी है।' आज हृदय में सैकड़ों मछलियों की तड़प से भरे हुये मन के क्षितिज के बाहर न जाने कितने करुणा के बादल हैं', पर वे कभी-कभी हौले-हौले चलते हुए अपनी छाया उस पर डाल भी जाते हैं। इसके चलते हृदय का मरुस्थल सुख से सिहर उठता है। इसी तरह 'कवि-कला' ... में वासंती उषा में अपने पंख रंगकर इंद्रधनुषी बादलों के रास्तों से होकर उड़ते हंस के रूप में कवि खुद को देखता है।

शमशेर ने लिखा है, प्रभाव किसी का भी, उन पर रहता थोड़ी देर ही है। 'उदिता' के 1980 वाले संस्करण की भूमिका में अपने भावुक व्यक्तित्व को ढालने वाले प्रभावों का ज़िक्र करने के साथ ही वे कहते हैं, "मगर मैं अपने कवि को मात्र उन प्रभावों का पुंज नहीं मानता। मेरी अपनी एकांत, और शायद गहरी, अनुभूतियाँ और संघर्ष की यातनाएँ भी आखिर कुछ अपनी ज़मीन कविता में रखेंगी हीं...।" उनके हिंदी कविता में पुनः प्रवेश के वक्त की कविताओं में धीरे-धीरे उनका अपना स्वर उठता दिखलाई पड़ता है। उनके सारे प्रेमियों ने 'स्थिर है शव-सी बात' शीर्षक कविता के नएपन को ठीक ही नोट किया है। एक बड़ी उदास रात का चित्र इसमें खींचा गया है। हवा बिल्कुल स्थिर है, जैसे शव हो। आसमान में चाँद भी लटका हुआ-सा है और नीली रात सीसे की तरह भारी है। गति का अभाव और सीसे का भारीपन, चाँद में कोई चमक भी नहीं। नीली पृष्ठभूमि में कांसे का रंग कोई हलचल नहीं उठाता। इस रात में पेड़ ऐसे स्थिर हैं, मानों ठिठुर गए हों। कहीं उल्लास का कोई कारण नहीं है। सपनों की ओट से झांकती आँखें निश्चल हैं। इस रात की यह भयावह स्थिरता हौंठ सुखा देती है। रात न सिर्फ गतिहीन है, बल्कि किसी ऊष्मा से भी रिक्त है। इसके चलते गहरी उदासी, गहन निराशा पैदा होती है। "नत जीवन का भाल/ प्रेम पड़ा है ठंडा मानव-उर का/ निद्रा तम के शून्य शिविर में/ अंधा पंगु बंधा है काल।" यहाँ जीवन का भाव बिल्कुल झुका हुआ है। भाल और नत के प्रयोग से निराशा का भाव और सघन हो गया है। 'वह भी दिन था एक' में भी "आज/ कलुष गहन करुण भाल/ है मेरे/ विनत वयस का!" जीवन का जो भाल झुका हुआ है, वह कवि का ही है। उसमें कोई तेज़ नहीं रह गया है, वह निराशा से मलिन (कलुषित) हो चुका है।

यह निराशा कितनी गहरी हो चुकी है और कितने भयावह तरीके से जीवन पर छा गई है, यह 'मृत्यु का प्रस्तर-खण्ड' कविता पढ़कर ही समझा जा सकता है : "एक बुझा काला विशाल मार्तण्ड/ कितने मौन युगों से डूब रहा हूँ महाशून्य में।" यह सूरज ऐसा है जो न डूबता है और न उगता है - वह महाशून्य में स्थिर-सा हो गया है। सूरज के डूब जाने की कल्पना मात्र से मन कांप उठता है, यहाँ तो कवि ने खुद अपनी कल्पना एक बहुत बड़े काले सूरज के रूप में की है, जो बुझ चुका है। वह अपनी जगह छोड़कर नीचे गिर पड़ा है, तभी उसकी विशालता का अंदाज़ हो पा रहा है। 'मार्तण्ड' का प्रयोग एक विशेष प्रकार की थर्राहट तो उत्पन्न करता ही है, निराशा के इस भाव को भी अत्यंत उदात्त स्तर पर प्रतिष्ठित कर देता है। जीवन का अभाव कुछ इस कदर मन को पीस रहा है, जैसे कवि स्वयं 'मृत्यु का प्रस्तर खण्ड' हो गया हो। यहाँ भी 'स्थिर है शव-सी बात' कविता की तरह ही कहीं कोई गर्मी नहीं है, ऊष्मा का स्रोत, सूर्य, बुझ जो चुका है! हरकत दिलाने के लिये यहाँ गर्मी नहीं, ठंड है : "चेतन करने को अंतर में जग उठती-सी कुछ ठण्ड" पूरा वातावरण सर्द है और 'प्रस्तर खण्ड' और 'मार्तण्ड' की उपस्थिति के कारण भारी भी। यहाँ मृत्यु को लेकर कोई संगीत नहीं रचा गया है। न ही मन के विषाद पर रहस्य का पर्दा डालकर उसे आकर्षक बनाने की कोशिश है। यह निराशा बहुत गहराई में, शमशेर की अपनी एकांतिक अनुभूति है, जो कविताओं की भीड़ में भी अपने खास इशारों से अपनी पहचान बना लेती है।

शमशेर का विषाद, मुक्तिबोध के शब्द लेकर कहें तो उनका 'मनो-वैज्ञानिक यथार्थ' था और एक सच्चे कवि की तरह उन्होंने इसे व्यक्त किया। 'उदिता' के आरंभ में जगदीश अग्रवाल के नाम 'एक पत्र' शीर्षक कविता में अपने टूटे हुए मन के बारे में वे बताते हैं : "गद्य के आवरण में टूटा हुआ था काव्य/ बहुत टूटा हुआ-सा था/ स्वयं जीवन के समान।" वे खुद को ऐसा महसूस करते हैं : 'छंद से बाहर/ पंगु मानो, भावना से रहित-/ शून्य।" ऐसी स्थिति में गहरे काले, नीले रंगों के प्रति कवि का आकर्षण स्वाभाविक ही मालूम होता है, क्योंकि वे उसकी मनोदशा के अधिक निकट पड़ते हैं। उदासी और अकेलेपन का यह अहसास 'उदिता' की कई कविताओं में है, 'चुका भी हूँ मैं नहीं' में संकलित कुछ कविताओं में भी जो आरंभिक दौर की ही हैं) यह मिल जाता है। अंधकार, मौन, गतिहीनता को इस दौर की कविताओं में कई रूपों में देखा जा सकता है। एक बहुत छोटी कविता 'घिरते आकाश को' देखिए :

घिरते आकाश को ताकता हताश।
गहरे नभ में चाँद खोता जाता है :
अंधकार
चुप-चुप हँसता आता सब ओर।

यह गहराते अंधेरे वाली रात का चित्र है, उतना ही कवि के मन का भी। यह रात गुज़र जाए, सुबह हो जाए, फिर भी प्रकाश उल्लसित नहीं करता : "यह सुबह जो शाम सी हुई है/ मानों य अभी नहीं हुई है।" सुबह भी शाम की तरह मालूम पड़ती है, इसका कारण यह भी है कि कवि का घर बंद है, उसमें कहीं से रोशनी आने की उम्मीद नहीं।

शाम हो या रात, अंधेरा शमशेर को घेरता ही है। 'कमरे में आभा' शीर्षक कविता में वह 'शाम का कोमल अंधियाला' धीरे-धीरे छा जाता है : "दीवारों पर, छत पर चुप-चुप/कुहरे-सा काला कुछ उदास/ मन छाया।" यह अंधियाला धीरे-धीरे इतना गाढ़ा होता जाता है कि पता ही नहीं लगता कि कवि का मन "कहाँ कौन जाने कब/ बैठा उस तम की मिट्टी में/ उसके संग समाया।" यही अकेलेपन की अनुभूति 'शाम की मटमैली खपरैल' में व्यक्त हुई है और 'चिड़िया-सा छिपा-लुका मेरा मन' या 'उठती है मतवाली' में तो इस निराशा और अकेलेपन की काली लहरें इतनी भयावह हो उठी हैं कि नागिन-सी लगने लगी हैं : "मैंने कैसी नागन पाली/हर ली जिसने उर की लाली। अधर जिह्वा पल भौंह कपोल चूम लिए जीवन विष मोल।" यह निराशा अपनों के अभाव की वास्तविक अनुभूति है। इसी संग्रह की एक कविता 'कौन बुलाता मेरे पथ से मुझको' में उन्होंने बताया है कि पिता-माता और पत्नी जिस ओर गए हैं, उसी ओर से उनको बुलावा आता है। उनका मन जैसे उनसे अलग हो गया है और 'अपनी ही छाया सशरीर/ अकेली मौन' खड़ी देखती रहती है।

अकेलेपन और दुख की इस तीव्रता में चेतना सो नहीं जाती, अत्यंत ही जाग्रत हो जाती है, सारी इंद्रियाँ जैसे हज़ार-हज़ार आँखें लेकर इस घने अंधेरे को भेदकर कुछ देखती रहती हैं। इस जाग्रत चेतनावस्था में वह प्राकृतिक स्थितियों का सूक्ष्म अंकन कर पाता है। इस लिहाज से 'आधी रात' कविता अनूठी है, जो आधुनिक हिंदी कविता में प्रकृति-संवेदना के एक बिल्कुल नए स्तर का उद्घाटन करती है :

बहुत धीरे-धीरे
बजे हैं बा ऽरा ऽ...
गिना है रुक रुक कर मैंने
बा र ह बा र
सुनो!
अब भी वैसे ही हवा में
बा रा बज रहे हैं...
(बादल घिरे हुए हैं दिन भर!)
एक का ए क्

श्वान भूकने लगे!
गा उठा बिरहा कोई दूऽर जाता पथ
पर...
नीम के सन्नाटे में एकाएक जोड़ा
उल्लुओं का चीख उठा
प्री ई अ, प्री ई अ,! प्रईअ!

पूरी कविता ध्वनियों के अलग-अलग 'शेड्स' के प्रयोग से एकदम नई हो गई है। यह 'आधी रात' शमशेर की बिल्कुल अपनी है। पहली दो पंक्तियों में दीर्घ ध्वनियों से रात के घिरने का भाव मूर्त होता है। फिर 'रुक-रुक' का प्रयोग और 'बारह-बारह' के सारे अक्षरों को तोड़कर एक-दूसरे से अलग-अलग कर देने पर एक जगे हुए, सांस रोक कर इंतज़ार करते हुए, आधी रात को देख रहे व्यक्ति की अनुभूति मिलती है। कुत्ते भूंकने लगते हैं, दूर जाते किसी पथिक के बिरहा गाने की आवाज़ अचानक सुनाई दे जाती है - इन दोनों ही ध्वनियों से रात के अकेलेपन का अहसास और गहरा हो जाता है। कविता का अंत तो इस आधी रात के विषाद को और तीखा कर देता है - नीम का पेड़ बिल्कुल खामोश खड़ा है, पत्तियाँ स्थिर हैं, अचानक उल्लुओं के एक जोड़े की कर्कश आवाज़ इस सन्नाटे और स्थिरता को चीर देती है। गहरी, तीखी अवसाद की यह अनुभूति हिर्दी कविता में उस अंदाज़ के जन्म की सूचना देती है, जिसे बाद में श्याम कश्यप ने 'शमशेरियत' का नाम दिया।

'शमशेरियत' की नींव अकेलेपन के अवसाद की ज़रूर है, और यही उनका मूल भाव है इसलिए बहुत बाद में भी हलचल और भीड़ में भी वे अकेले खड़े दिखाई दे जाते हैं। पर ऐसा नहीं कि उनमें एकाकीपन और अवसाद ही अवसाद है। मुक्तिबोध ने लिखा है कि लेखक को "भयानक से भयानक परिस्थितियों में भी मानव-ऊष्मा प्राप्त होती रहती है। मानव-ऊष्मा का यह सुख स्पर्श जो मनुष्य को अगतिकता के भाव से बचाता है या कम करता है, अपने-आप में एक बड़ा मानव-मूल्य है।" 'आज हृदय भर-भर आता है' मैं भयानक वेदना के बीच भी, करुणा के बादलों की छांह कभी-कभी मन पर पड़ती है। उसके कारण :

उठता सुख से सिहर मरुस्थल
मेरे उर का - दो कण पाकर
उस सुषमा की छाँह निमिष का
जिसमें अस्फुट-सा आशा का स्वर।

सुषमा के दो कण भी सुख की सिहरन पैदा करने की क्षमता रखते हैं, अकेलेपन से बाहर निकलने की प्रेरणा देते हैं।

23.2.3 मनुष्य और समाज

अकेलेपन से बाहर निकलने का यह संघर्ष मार्क्सवादी माडलों के प्रति तीव्र आकर्षण के साथ शुरू हुआ। 1936 के आस-पास प्रगतिशील आंदोलन शुरू हुआ। उसने मार्क्सवादियों के अलावा पंत जैसे कवियों पर भी असर डाला। शमशेर ने देखा कि उन्होंने अपने लंबे केश छंटा लिये थे और बिल्कुल 'नार्मल' आदमी की वेश-भूषा अपना ली थी। निराला की तरह पंत का प्रभाव भी उन पर गहरा था। यह सारा माहौल उन्हें अपने से बाहर निकलने की प्रेरणा दे रहा था। 'दूसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में उन्होंने अपने शुरुआती दौर के बारे में लिखा, "सन 38-39.. से सन 42 तक मेरा रुझान ज्यादातर क्या बिल्कुल अपनी ही दुनिया के अंदर खिंचते चले जाने की तरफ रहा। उस एकाकीपन की घुटन और उसी की मजबूरियों से पैदा होने वाले पलायन के सपनों और गीतों से छुटकारा पाने के लिये धीरे-धीरे जो संघर्ष मेरे अंदर सन् 42-43 में शुरू हुआ, वह मेरे चारों ,तरफ की ज़िंदगी में बहुत पहले पैदा हो चुका था।" लेकिन ऐसा नहीं है कि वे मार्क्सवाद के असर में आए और सामाजिक अंतर्वस्तु की कविताएँ लिखने लगे। रंग उनका अपना ही रहा, पर जीवन के प्रति जो उम्मीद अस्फुट-सी थी, फूटकर बह निकली।

इसके चिन्ह 'आह्वान' शीर्षक कविता में देखे जा सकते हैं। पहले उन्हें जीवन से दूर चले गए स्वजन अपनी ओर बुलाते रहते थे। 'आह्वान' में इस बुलावे की दिशा बदल गई है। गुज़र गए माँ और पिता की याद अभी भी मन में दृढ़ है, लेकिन वह अब दूसरा असर डालती है। वे 'उमंग' का आह्वान कर रहे हैं। कैसी है यह उमंग?

हड्डी-सी पुराने युग की
मेरे पिता के गाने के धुन-सी!
जिसमें बसा मेरी माँ का प्रेम!

यह उमंग बिल्कुल नए ढंग की है, खुदाई से निकली किसी पुराने युग की हड्डी की कठोरता इसमें है, तो अंदर कहीं एक हलराती-सी आर्द्रता भी है। यहाँ निराशा से लड़ने का एक नया संकल्प दिखाई देता है।

'कहाँ हवा में तैर गए हैं कान' शीर्षक कविता में टूट चुकी देह और मन का भाव-चित्र खींचने के बाद वे कहते हैं : "जाने दो! फिर सींचो/ रक्तिम आशाओं में अपना तन/ अपनी पलकों में सुरमा दो आज-अपने तम का।" मार्क्सवाद से परिचय और आकर्षण के कारण उनके अकेलेपन के भाव का लोप तो हो ही गया, पर उसी का सहारा लकर वे नए विश्वास के साथ 'कानों में अपनेपन के धूमिल कुंडल' पहनकर इस विश्व और समाज में प्रेम और सौंदर्य की नई संभावनाएँ खोज सकते थे।' दो स्टैंजा' नामक कविता उनकी भावभूमि और मनोभूमि में आ रही तब्दीली का परिचय तो देती है, बहुत कम शब्दों में वह उनके उस दृढ़ आधार का पता देती है, जिस पर खड़े रहकर जीवन भर वे अपने ढंग की कविताएँ लिखते रह सके :

अरुण प्रात में सुंदर उज्ज्वल
जिसका सूना निश्चल तारा,
एकाकीपन जिसका सम्बल-
अमा-दिवा! वह किसका प्यारा?
आज अकेले किसके प्राण?
मेरे कवि के! मेरे कवि के।
जिसने जीवन के सम्मान
फूँक दिए आँगन में छवि के!

अकेलेपन को ही जिसने अपना संबल बना लिया हो, उसे कौन तोड़ सकता है! कविता जैसे चीत्कार करती हुई बताती है कि इस अकेले व्यक्ति ने सौंदर्य की तलाश में जीवन की सारी इच्छाओं को जला डाला है। ज़ाहिर है, इस सौंदर्य में सिर्फ़ गुनगुनाहट नहीं है, जैसा डॉ. शर्मा को और चुपके-चुपके और लोगों को भी लगता है। इसमें बहुत कुछ कठोर है। मई 1940 की एक दिन की डायरी में वे लिखते हैं, "सौंदर्य को सत्य में ढालने के लिए छवि की मुद्राएँ मुझे कसती हैं और छोड़ देती हैं। अपना बनाकर धीरे-धीरे और-और बिल्कुल अपना। कठोर सौंदर्य और सत्य का वरण।"

मई, 1940 की डायरी में शमशेर ऊँचे, मगर अकेले, अलग नीड़ में बैठे बुलबुल के दिल में उठने वाले उस राग का ज़िक्र करते हैं, जो अपनी कमज़ोरी पर सब्र करने से मिली ताकत से पैदा होता है, मगर यह महसूस करते हैं कि यह मुक्त, पर खोलकर उड़ने का राग नहीं है। 'निराला के प्रति' में भी वे निराला को अपना कवि कहकर बुलाते हैं, तो इसलिए कि वे :

काल में (तमघोर)
बरसाते प्रवाहित रस अछोर अथाह।
छू किया करते
आधुनिकतम दाह मानव का
साधना स्वर से

मनुष्य के हृदय को शांति पहुँचाना कवि का दायित्व होना चाहिए - यह निराला से लेकर मार्क्सवाद तक ने उन्हें समझाया। मार्क्सवाद से उनके परिचय ने न सिर्फ़ सामाजिक जीवन में बदलाव लाने के संघर्ष में उन्हें उतारा, बल्कि समाजी रिश्तों के बीच एक अकेले आदमी की जगह को पहचानने में मदद की। मार्क्सवाद ने उन्हें बताया कि वे इतिहास के एक अंग हैं और इस तरह चारों ओर से संबद्ध हैं, अनजाने, अनचाहे! इस संबंध सूत्र के उद्‌घाटन के बाद उनका अकेलापन भी उस ऐतिहासिक प्रवाह के एक विशेष बिंदु पर स्थित दिखाई पड़ने लगा। मार्क्सवाद को एक रूढ़ विचारधारा की तरह उन्होंने ग्रहण नहीं किया। डॉ. रामविलास शर्मा से बात करते हुए उन्होंने कहा, "बहुत-सी बातें मेरे दिल में उठती हैं, अपना हल खोजती हैं, डौग्मा में नहीं, लाइन में नहीं, - अपने उस इतिहास में, जिसका मैं एक अभिन्न अंग हूँ, जिसका मैं, और मेरे नीचे की मंजिल में सिलाई की मशीन चलाने वाले शब्बीर मास्टर अभिन्न अंग हैं - और वह कितने अलग-अलग हैं।" मार्क्सवाद उनके लिए आक्सीजन की तरह ज़रूरी था क्योंकि उसने उन्हें समाज के साथ ही नहीं, इस पूरे ब्रह्मांड के साथ अपने संबंध की पहचान तो कराई ही, यह भी बताया कि वे, उनकी संवेदनाएँ किस तरह औरों से विशिष्ट हैं और किस तरह उनका एक अपना मूल्य है।

मार्क्सवादी होने के बाद, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता ग्रहण करने के बाद, कम्यून में पूरावक्ती कार्यकर्ता के रूप में रहते हुए भी शमशेर का आत्मपरक स्वर मंद नहीं पड़ा, इससे आलोचकों को काफी उलझन हुई है और उसकी चर्चा इस इकाई के आरंभिक खंड में की जा चुकी है। लेकिन शमशेर ने कलाकार वाले 'इंट्यूशन' से मार्क्सवाद के मानवीय आशय को समझ लिया था। मार्क्सवाद यह देख पाता है कि मनुष्य और प्रकृति, मनुष्य और मनुष्य, स्वतंत्रता और आवश्यकता के बीच पूंजीवादी समाज में ऐसा द्वंद्व रहता है, जो सुलझ नहीं सकता। साम्यवाद इस द्वंद्व का सही मायनों में समाधान करता है। मार्क्स ने 1844 की पांडुलिपियों में कहा कि चूंकि समाज ही मनुष्य को मनुष्य के रूप में पैदा करता है, इसलिए बिना दूसरों के सीधे संपर्क में आए जो कार्य वह (मनुष्य) संपन्न करता है, वह कार्य भी सामाजिक होता है क्योंकि वह उसे बतौर मनुष्य ही करता है। वह जिस सामग्री को लेकर काम करता है, वह भी सामाजिक वस्तु है, उसका अपना अस्तित्व भी सामाजिक क्रिया है और इसी वजह से "मैं अपना जो कुछ भी करता हूँ, वह समाज के लिए ही और एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपनी चेतना के साथ ही करता हूँ।" इसके साथ ही वे मनुष्य की विशिष्ट वैयक्तिकता पर काफी ज़ोर देते हैं क्योंकि यही विशिष्टता एक वास्तविक प्राणी बनाती है, "दरअसल उसकी विशिष्टता ही उसे एक व्यक्ति बनाती है, एक वास्तविक विशिष्ट सामाजिक प्राणी बनाती है।" 'पर्टिकुलर' और 'इंडिविडुअल' पर मार्क्स का खास ज़ोर ध्यान देने योग्य है क्योंकि इससे पता चलता है कि दरअसल मार्क्सवाद इस विशिष्ट वैयक्तिकता के उद्‌घाटन और उसके लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है, न कि वह उसे किसी अमूर्त सामाजिक अवधारणा में विलीन कर देने का कार्यक्रम है, जैसा मार्क्सवाद - विरोधियों को तो वह लगता ही है, दुर्भाग्य की बात यह है कि मार्क्सवादियों को भी यही अपना 'मिशन' नज़र आता था (!)। मार्क्सवाद सामान्यीकरण और अमूर्तीकरण का दर्शन नहीं है। शमशेर ने उसके मूल स्वर को पहचान लिया था, इसलिए वह कलाकार को किस तरह बदलता है, इसे लेकर वे एकदम स्पष्ट थे, "कलाकार स्वयं को बदलेगा, बदलेगा एक माध्यम बनाने के लिए, अपने को एक अत्यधिक 'सेन्सिटिव' माध्यम, सक्षम द्रष्टा, 'पोएट, इन द ऐंशेन्ट सेंस ए मेकर -।" इस दृष्टि से देखें, तो कम्युनिस्ट होने के बाद शमशेर की अपनी संवेदना ने एक गहराई तो पाई ही, उसे व्यापकता भी मिली।

मार्क्सवाद और कम्युनिस्ट पार्टी से संपर्क ने शमशेर को जीवन और उसके सौंदर्य के प्रति आस्था को दृढ़ किया। आशा का यह स्वर 'नव सूर्य' के अभिनंदन में सुनाई पड़ता है या फिर 'बार-बार मन चाहता है' में। इन क्रूर, कठिन, भ्रांत परिस्थितियों में संन्यास लेने की तरफ़ भागते मन को वे 'जीवन के भूखे समरांगण के राग' की तरफ खींच कर इन्हीं में लय होकर अपनी

गति को पहचानने की बात करते हैं। 'कर्म करो' में जीवन से हीनता, दुराव हटाकर कार्य करने का आह्वान करते हैं, "कर्म की शक्ति का अनन्ततः/ मानस-लहरों में हो/ ज्योति-फहराव।/ अंधकार वरो नहीं।" उसी तरह 'फिर वह एक हिलोर उठी' शीर्षक कविता में मज़दूर-किसानों के हठी कठिन स्वर में अपना स्वर मिलाने का आह्वान कवि से करते हैं। इसकी वजह यह है कि "उनके मिट्टी के तन में है अधिक आग/ है अधिक ताप।" उनके चारों ओर जो संघर्ष चल रहा था, उसमें निश्चय ही वामपंथी रुझान प्रबल था जो युवाओं को बहाए ले जा रहा था। उसे वे ठीक ही 'नूतन प्राण-हिलोर' कह कर बुलाते हैं। इस संबोधन से उस सामाजिक आंदोलन के प्रति उनका अपनत्व प्रकट होता है। लेकिन यह सही है कि मार्क्सवादी विचारधारा से संपर्क के बाद समय-समय पर शमशेर ने राजनीतिक घटनाओं या विषयों पर जो कविताएँ लिखीं, उनमें प्रायः 'वक्तृता' ही है और वह जहाँ-तहाँ प्रभावशाली हो जाएँ तो हो जाएँ, प्रायः ऐसी कविताएँ बहुत कम प्रभाव छोड़ती हैं। जहाँ वे इस भाव से कविता लिखते हैं कि वह उनका सामाजिक दायित्व है, जिसे पूरा करना ही है, वहाँ वे सपाट हो जाते हैं। लेकिन जब घटनाएँ उन पर गहरा असर छोड़ती हैं, तब उनका कवि-मन व्यथा में गहरे डूबकर पीड़ा से छटपटाती पंक्तियाँ निकाल लाता है। ग्वालियर की सामंती सियासती सरकार ने मज़दूरनों के जुलूस पर गोली चलाई। शमशेर ने उनका स्वर-चित्र खींचा, 'य' शाम है/ कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का।/ लपक उठीं लहू-भरी दरातियाँ/ - कि आग है/ धुँआ-धुँआ/ सुलग रहा ग्वालियर के मजूर का हृदय।" इस कविता की मंथर लय के साथ इसका दृढ़ गंभीर स्वर एक विचित्र प्रकार के उदात्त वातावरण की सृष्टि करता है, जिसमें सिर्फ करुणा का भाव नहीं है। इस तरह के चित्र उनकी इस प्रकार की कविताओं में यत्र-तत्र मिल जाते हैं। बंबई में वर्ली के 70 किसानों को देखकर उन किसानों के लिए वे शक्ति और ऊर्जा से भरा हुआ यह रूपक खींचते हैं :

ये वही बादल घटाटोपी
बिजलियाँ जिनमें चमकतीं?
खून में जिनके कड़क ऐसी, कि
- गोलियाँ चलतीं
. . . . . .
. . . . . .
. . . . . .
इनकी आँखों में तड़कती धूप
सख्त बंजर की।

घटाटोपी बादलों में बिजलियों का चमकना, खून में कड़क, गोलियों का चलना, सख्त बंजर पर पड़ रही तड़कती-धूप - ये सब मिलकर उन आदिवासियों का एक भव्य चित्र खड़ा करते हैं। इसी तरह बिलकुल सपाटबयानी का सहारा लेकर लिखी गई कविता 'नाविक विद्रोहियों पर बमबारी बम्बई, 1946' की इन पंक्तियों को देखिए :

लगी हो आग जंगल में कहीं जैसे,
हमारे दिल सुलगते हैं।
. . . . . .
. . . . . .
सरकारें पलटती हैं जहाँ हम दर्द से
करवट बदलते हैं।

लेकिन ऐसे शक्तिशाली बिंब इन विषयों पर लिखी शमशेर की कविताओं में कम मिलते हैं। हरिशंकर परसाई ने तो यहाँ तक कहा है कि शमशेर की सबसे रद्दी कविताएँ वे हैं, जो क्रांतिकारी हैं और जिनमें उन्होंने प्रतिबद्धता जताने की कोशिश की है।

'वाम वाम वाम दिशा' शीर्षक कविता कम्युनिस्टों को खासतौर पर पसंद है और उसकी पहली दो पंक्तियों के पोस्टर बनाकर सम्मेलनों और जुलूसों में लगाए जाते रहे हैं, पर यह कविता शमशेर की श्रेष्ठ कविताओं में नहीं रखी जा सकती क्योंकि इसकी सपाट वक्तृता में कोई ज़ोर नहीं, "लोकतंत्र-पूत वह/ दूत, मौन, कर्मनिष्ठ/ जनता का एकता-समन्वय वह/ चिर विजयी वय में वह ध्येय-धीर/ सेनानी/ अविराम/ वाम-पक्षवादी है।" श्रमिक के इस पूरे सकारात्मक चित्र में निश्चय ही वह ताकत नहीं, जो दर्द से करवट बदलते नाविकों के चित्र में है। ऐसी कविताओं में भी जहाँ शमशेर की आत्मपरकता का स्पर्श है, वहाँ वे नई हो उठी हैं, जैसे 'लेकर सीधा नारा'। इसमें 'डूबती हई पलकों' और आशाओं की अंतिम संध्याओं के बीच से एक पुकार सुनाई पड़ती है। जो 'एक सीधा नारा' है, वही जीने की नई वजह बन जाता है। कविता का अंत इस प्रकार होता है :

मैं समाज तो नहीं, न मैं कुल
जीवन
कण-समूह में हूँ मैं केवल
एक कण
-- कौन सहारा!
मेरा कौन सहारा!

इसमें निराशा और कातरता नहीं, सहारा पाने की तीखी छटपटाहट दिखलाई पड़ती है, जो इस कविता को मात्र राजनीतिक नहीं रहने देती। 1950 के दशक में शमशेर ने कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता छोड़ दी। वजह मार्क्सवाद से मोहभंग नहीं था। कारण कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं का वह रवैया था, जो उन्हें कला-विरोधी लगता था, "एक रचनाकार/ कलाकार इस 'इज्म' को आगे किस प्रकार से ले इसकी कोई दिशा इन नेताओं के पास नहीं थी।" लेकिन पार्टी छोड़ने का मतलब मार्क्सवाद से विच्छेद नहीं था। यह उनके आखिरी दिनों के वक्तव्यों और कविताओं से भी स्पष्ट है।

शमशेर ने मार्क्सवाद के बुनियादी पहलुओं को हमेशा के लिए प्रेरणादायी माना है। इन्हीं से उनकी यह धारणा दृढ़ हुई थी कि कला-सृजन भी अन्य कार्यों की तरह ही एक स्वतंत्र कार्य है। वह मात्र पुनः सृजन नहीं है, नया सृजन भी है। कला का काम सौंदर्य का सृजन करना है। यह नहीं कि दुनिया में जो सारे काम हो रहे हैं, घटनाएँ घट रही हैं, कविता या कला उन्हें प्रतिबिंबित मात्र करे। वह अपने तौर पर कुछ ऐसा पैदा करती है, जो और कोई नहीं कर सकता और इसी वजह से उसका विशिष्ट सामाजिक और मानवीय मूल्य है। यह विचार की वह दृढ़ भूमि है, जिस पर खड़े होकर शमशेर डॉ. रामविलास शर्मा से बहस कर सकते थे। मार्क्सवाद ने दूसरी एक महत्वपूर्ण भावना 'विश्व-बंधुता' को उनके अंदर दृढ़ किया। यह भी संभवतः मार्क्सवादी होने का ही परिणाम था कि वे प्रकृति और मनुष्य में कहीं भी मिल जाने वाले सौंदर्य को अंकुठित भाव से चित्रित कर सके। सौंदर्य-चित्रण को लेकर कुंठा कहीं-कहीं छायावाद में मिलती है और प्रगतिवाद में खास किस्म के सौंदय-चित्रण को स्वीकृति थी, प्रगतिवाद के बाद उभरनेवाली कविता में भी सौंदर्य और बौद्धिकता के बीच सहज संबंध नहीं पाया गया था। लेकिन शमशेर ने सौंदर्य के व्यापक और गहन मानवीय और सामाजिक अभिप्राय को समझ लिया था, मनुष्य के लिए उसकी सार्थकता उनके लिए विवाद से परे थी, इसलिए व्यंग्य-बाणों को झेलते हुए उन्होंने सुंदर की खोज जारी रखी।

23.2.4 प्रकृति

शमशेर की सौंदर्य-संवेदना का विस्तार प्रकृति, मनुष्य से लेकर मानवीय भावों तक है। शुरू से ही प्रकृति के अलग-अलग रंग उन पर गहरा असर डालते रहे हैं। वे प्रायः रंगों में और गतियों में ही प्राकृतिक रूपों को ढलता हुआ देखते हैं। प्रकृति से उनके कवि-मन के विचित्र संबंध को समझने के लिहाज से 'उदिता' की भूमिका का यह खंड देखना उपयोगी होगा, "शामों की झुरमुट में, जब पच्छिम के मैले होते हुए लाल पीले बैगनी रंग हर चीज़ को लपेट कर अपने

गहरे मिले-जुले धुँधलके में खोने-से लगते हैं - आपने क्या उस वक्त कभी ध्यान दिया है कि कैसे हर चीज़ एक ही खामोश राग में डूबने लगती है...?" शुरू से ही आसमान और रंग उन पर एक खास ढंग से असर डालते हैं। दूसरी खासियत यह है कि प्रकृति के दृश्यों का अंकन उस ख्याल के साथ ज़रूर होता है, जो उन्हें देखते हुए मन में उठता है। 'उदिता' में ही संकलित 'लहरें/ शाम/ वह नगर' शीर्षक कविता में शाम के समय के बादलों का अंकन मिलता है, जिनके बीच से तरह-तरह से रोशनी आ-जा रही है और कई रंगों की सृष्टि कर रही है। यह बादल बैंगनी-संदली, भूरे, सुर्मयी-सिंदूरी, धुले-सांवले, पीले-गुलाबी से, ऊदे-कारी, नीले-गहरे-से मटमैले हैं। देखने की बात है कि शमशेर ने कितनी बारीकी से रंगों को पहचाना और अलग किया है। उनकी इस तरह की कविताओं को देखने के बाद कहना पड़ता है कि हिंदी के किसी और कवि ने इतना मगन होकर सांध्यकालीन आकाश को नहीं देखा। पर ये बादल स्थिर हैं या चल रहे हैं ... भारी/शांत ढलते, नींद से भरे/ सपनों से बोझिल धीर/ अपने अंत से विज्ञ/ संतुष्ट।" जिन सपनों से बोझिल ये बादल हैं, वे दरअसल किसी की याद है। शमशेर शेष कविता में उस ख्याल की बातें करते हैं, जो इस शाम ने उनके मन में किसी की याद दिलाकर पैदा कर दिया है।

बहुत तटस्थ भाव से, तथाकथित यथार्थवादी ढंग से प्राकृतिक दृश्यों का अंकन शमशेर नहीं करते। उनका मन उस चित्र में कुछ इस कदर घुला-मिला रहता है कि कविता पढ़कर यह बताना कठिन हो जाता है कि प्राकृतिक दृश्य मन पर असर डाल रहे हैं या कवि का मन ही प्रकृति को अपने ख्याल के रंग में निहार रहा है। इसीलिए ऐसे चित्रों में रंगों और गतियों का विशेष तौर पर अंकन मिलता है। 'संध्या' कविता में बादलों का यह चित्र द्रष्टव्य है :

बादल अक्टूबर के
हल्के रंगीन ऊदे
मद्धम मद्धम रुकते
रुकते-से आ जाते
इ त ने पास अपने।

शब्दों को तोड़कर गति को विलंबित कर देने से धीमे-धीमे सरकते बादलों का एक अद्भुत चित्र मिलता है। निगाह बादलों से हटकर पेड़-पौधों पर घूम जाती है :

एक्-इक पत्ता साकत्
ठै रा, सन्ध्या भा में
सु न ता - सा कुछ किस को
इ त ने पास अपने।

बादलों में तो फिर भी गति है, यहाँ तो मानो शाम की रोशनी में हर चीज़ साध कर कुछ सुनने की कोशिश में है। इसी बीच अचानक कुछ यादें कौंध जाती हैं,

या दों की द्वा भा एँ
बा दल के भा लों पर
चमकी-सी लय होने
धीरे-धीरे-धीरे
इ त ने पास अपने।

जैसे क्षितिज के नीचे जाते सूरज का मंद प्रकाश अचानक बादलों के ऊपर चमक उठता है, वैसे ही मन में यादें कौंध जाती हैं। फिर उसी प्रकाश की तरह लय भी हो जाती है।

डॉ. रामविलास शर्मा की शिकायत शमशेर से यह है कि वे प्राकृतिक दृश्यों का अंकन करते हैं, जैसे शाम के समय के आसमान का, या बादलों का, या पेड़-पौधों का, तो यह पता नहीं लग

पाता कि उस चित्र का संबंध किस गाँव से, किस अंचल से है। इसलिए उनकी धारणा है कि प्रकृति के जो बिंब शमशेर की कविताओं में आते हैं, उन्हें किताबें पढ़कर भी रचा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, ये प्रकृति-चित्र रंगीन तो हो सकते हैं, पर हैं प्राणहीन ही। डॉ. शर्मा कहते हैं, "ये शहर का आदमी है जो बिना इस बात का ध्यान रखे हुए कि मैं शाम कहां देख रहा हूँ, शाम के बारे में बात करता है। उनके यथार्थवाद में यह कमजोरी है।" कहने की ज़रूरत नहीं कि डॉ. शर्मा का खास ढंग का यथार्थवाद शमशेर के अपने यथार्थ को स्वीकार नहीं कर पाता। इस टिप्पणी से ऐसा ज़ाहिर होता है, मानो शहर के आदमी को प्रकृति को निहारने की, उससे आनंदित होने की इजाज़त ही नहीं है। क्या डॉ. शर्मा यह कहना चाहते हैं कि आसमान में बदलते रंगों का चित्र तब तक पूरा नहीं होगा, जब तक कि उसके नीचे की मिट्टी की गंध उसमें न मिल जाए? यथार्थ-दर्शन का कोई एक मानक तरीका ही स्वीकृत हो, यह ज़रूरी नहीं। इस संदर्भ में 'उदिता' में दिया गया शमशेर का वक्तव्य महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं कि शाम के धुंधलके में जब सारी चीज़ें गुग्न होने लगती हैं, तब कभी-कभी "वक्त के बहते हुए धारे में एक ठहराव-सा आता महसूस होता है - अब मान लीजिए यह पृष्ठभूमि आपके दिल की किसी खास चोट की है। मुमकिन है वह शाम आपको अपनी ज़िंदगी का एक टुकड़ा लगे - जिसका फैलाव अब पश्चिम से पूर्व तक और ज़मीन से आसमान तक-देख रहे हैं।" हो सकता है, इस मंजर को देखते हुए आपके मन में यों ही एक ख्याल उभर आए। शमशेर कहते हैं : "इसी ख्याल के सुर ताल और रंग और नक्श और लहर मेरी कविता है।" सवाल यह है कि यह ख्याल यथार्थ है या नहीं?

डॉ. रामविलास शर्मा की धारणा के विपरीत सच तो यह है कि शमशेर ने प्रकृति के कुछ अत्यंत अछूते बिंब और उनसे जुड़ी हुई अपनी खास संवेदना के चित्र हिंदी कविता को दिए हैं, जो उनके अलावा और कहीं नहीं मिल सकते थे। जैसे इस चांद को देखिए, "सँवलाती ललाई में लिपटा हुआ/ काफी ऊपर/ तीन चौथाई खामोश गोल सादा चाँद"। आगे चलकर यह चाँद जब कवि के मन में गहरा उतर जाता है, तो यह बिंब मिलता है, "रात में ढलती हुई तमतमायी-सी/ लाजभरी शाम के/ अंदर/ वह सफेद मुख/ किसी ख्याल के बुखार का।" चाँद अब भी चाँद है, पर वह अपना रूप छोड़कर एक संवेदना में बदल जाता है। 'क्षीण नीले बादलों में' में ढलती शाम और गहराती रात का चित्र है। देखने वाले की मनःस्थिति का अंकन भी साथ-साथ है :

बादलों में दीर्घ पश्चिम का
आकाश
मलिनतम।
ढके पीले पाँव
जा रही रुग्णा संध्या।
. . . . . .
नील आभा विश्व की
हो रही प्रति पल तमस।

बीमार शाम का पीलापन रात के गहरे अंधेरे में बदल रहा है। लेकिन इस समय चाँद आसमान पर कुछ इस तरह है मानों बीत चुकी शाम की एक खिड़की-सी खुली रह गई है। जैसे शाम बीत गई है, वैसे ही कवि के जीवन से भी किसी का भाव बीत चुका है। वह इस खुली खिड़की से झाँकने लगता है। इसी खुली खिड़की की वजह से कवि के मन पर छाया अंधेरा उसे पूरी तरह ग्रस नहीं पाता

विगत सन्ध्या की
रह गई है एक खिड़की खुली।
झाँकता है विगत किसका भाव।

कविता का अंत इस तरह होता है : बादलों के घने नीले केश चपलतम आभूषणों से भरे लहरते हैं वायु - संग सब ओर।

शाम को रात में ढलते देखने वाला मन रुग्ण नहीं, इसका प्रमाण यह है कि बादल उसे आभूषणों से सजे घने नीले लहराते केश की तरह लग रहे हैं। स्थिरता और अवसाद का जो भाव कविता के आरंभ से चला आ रहा था, वह गति में बदल गया लगता है। शमशेर के प्रकृति-चित्रों को उन्हीं के नज़रिए से देखना चाहिए, न कि उस दृष्टि से जिससे केदारनाथ अग्रवाल या नागार्जुन के प्रकृति-चित्रण को देखा जाता है। शाम की नीलाहट, रात का अंधेरा, जाड़े की सुबह की कोमल धूप, सागर की लहरें - ये सब उनके संवेदनलोक के अभिन्न अंग हैं। प्रकृति के अलग-अलग रंगों, उसकी अलग-अलग भंगिमाओं के साथ मानवीय संवेदनाओं का जो विचित्र संबंध है, वह आधुनिक हिंदी कविता में जितने सशक्त ढंग से शमशेर के यहाँ अभिव्यक्त हुआ है, उतना शायद कहीं और नहीं। डॉ. शर्मा की शिकायत है कि उनकी प्रकृति संबंधी कविताएँ प्रतीकात्मक हो जाती हैं। इसके विपरीत, जैसा हम ऊपर की कविताओं को देख सकते हैं, शमशेर-प्रकृति-चित्रों को प्रतीक नहीं बनाते, वे उनके मन में जैसे उतरते हैं, वैसे ही वे उनका अंकन करते हैं।

शमशेर के प्रकृति-चित्र सिर्फ नीले, पीले और काले रंगों से बने हों, ऐसा नहीं। वे हवा में 'सन सन ज्योति के हर तीखे बान' चलते हुए देखते हैं और उनके यहाँ आकाशवन सुलगता भी है, उसमें लाल, गौहर और जमुर्रद के निशान उड़ते हुए मिलते हैं। दरअसल प्रकृति उन पर चारों ओर से हमला करके उनकी सारी इंद्रियों को उत्तेजित कर देती है। वह उनकी मानवीय संवेदना का विस्तार बन जाती है। शमशेर के लिए प्रकृति सामाजिक जटिलताओं से पलायन के बाद शरण-स्थली नहीं है, वह हर रूप में, हर बार एक नए ढंग से समाज की ओर लौटा ले जाती है। प्रकृति जैसे उनकी त्वचा से होकर अंदर समाई हुई है। 'जाड़ों की सुबह के सात-आठ बजे' शीर्षक कविता में वे कहते हैं :

उड़ते पंखों की परछाइयाँ
हल्के झाड़ू से धूप को समेटने की
कोशिश हो जैसे

धूप को समेटने की यह कोशिश व्यर्थ है, क्योंकि अगर वह सिर्फ बाहर फैली हो, तो झाड़ू से समेटी भी जा सके, पर 'धूप मेरे अंदर भी/ इस समय तो।' इस अंदर की धूप को पकड़ना और कवि से अलग करना जितना कठिन है, उतना ही मुश्किल है शमशेर की प्रकृति-संवेदना को अलग से पकड़ना क्योंकि वह उनकी मानवीय संवेदना के अंदर धंसी है।

23.2.5 प्रेम और सौंदर्य

कला, शमशेर के लिए, मनुष्य की आत्मा का सबसे बड़ा संघर्ष है क्योंकि उसी में यह ताकत है कि वह मानव-समाज को एक कर दे। शमशेर पर बात करते समय अक्सर इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों कला, सौंदर्य, प्रेम आदि का विशिष्ट परिप्रेक्ष्य 'इतने पास अपने' में संकलित 'कला' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में मिलता है :

कला सबसे बड़ा संघर्ष बन जाती है
मनुष्य की आत्मा का -
प्रेम का कँवल कितना विशाल हो जाता है
आकाश जितना
और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौंदर्य
हो जाते हैं
मनुष्य की आत्मा में।

कला में खिलनेवाला प्रेम का कमल अपरिमित विस्तार रखता है और इसी व्यापकता में वह सौंदर्य की सृष्टि भी करता है। यही तो कला का उद्देश्य है। सिर्फ इसी अर्थ में शमशेर प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। मुक्तिबोध ने उन्हें 'प्रणय भावना' के एक विशिष्ट कवि के रूप में चिन्हित किया है। अक्सर उनकी कविताओं में व्यक्त प्रणय-भावना को उनके जीवन में व्याप्त नारी के अभाव से उत्पन्न असंतोष से जोड़कर देखा गया है। जैसे उन्हें बड़े सीमित, संकीर्ण अर्थ में 'सौंदर्य का कवि' कहा गया है, वैसे ही यह भी मान लिया गया है कि नारी-शरीर का सौंदर्य उन्हें अपनी ओर ज्यादा खींचता था। लेकिन क्या यह हैरानी की बात नहीं और हिंदी के आलोचकों पर सख्त टिप्पणी नहीं कि उनकी अब तक प्रकाशित कविताओं में नारी-शरीर के सौंदर्य का अंकन करने वाली कविताओं की संख्या दस तक भी नहीं पहुंचती? दरअसल, नारी-शरीर का वर्णन उनका अभीष्ट उतना नहीं, जितना उस शरीर की मुद्राओं से आकृष्ट कलाकार की तरह उनके सौंदर्य का अंकन! एक कसी हुई, सुतवां देह का ठोसपन उनसे 'एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा' जैसी कविता लिखवाता है, तो कोई नृत्य-मुद्रा 'और-और कस उभर' जैसी कविता की रचना करवाती है। यह भी सच नहीं, जैसा उनके कुछ प्रेमी उन्हें रीतिवाद के आरोप से बचाने के लिए कहते हैं कि शमशेर नारी-शरीर का खुला वर्णन नहीं करते, उस पर आवरण-सा डाल देते हैं या उस शरीर का पार्श्व-बिंब आंक कर काम चला लेते हैं। ऐसे शमशेर-रक्षकों के कहने का अर्थ सिर्फ यह है कि उनके ऐसे चित्र नारी-शरीर के संकेत देकर पाठक को आमंत्रित करते हैं कि बाकी वह अपनी कल्पना से पूरा कर लें। इस धारणा के उलट, सच यह है कि शमशेर चित्र जब आंकते हैं तो पर्दा कहीं नहीं होता। एक गतिमान, सुतुवां नारी देह का यह चित्र देखिए :

एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा
सचमुच?
जंघाएँ दो ठोस दरिया
ठैरे हुए - से

जो जंघाएँ ठहरे हुए दरिया-सी लगती हैं, उन्हें कवि देख रहा है कि वे दरअसल तेज़ गति में हैं

मगर जानता हूँ कि वो
बराबर-बराबर बहुत तेज
रौ में हैं

ठहरी हुई जंघाएँ नहीं हैं, ठिठक तो वह खुद गया है, उसकी 'दृष्टि/ एकटक', 'ठोस वक्ष कपोल' देख रही है, जो उसे चैलेंज-सा दे रहे हैं, उसे निमंत्रण दे रहे हैं कि वह उस 'अष्टधातु की मूर्ति' की तरह उस ठोस बदन का अंकन करे। चुनौती दरअसल कलाकार शमशेर को है। 'प्रेयसी' कविता में दरिया तो नहीं है, पर यहाँ पूरा बदन ही एक जल-प्रपात की तरह दीखता है :

तुम्हारा सुडौल बदन एक आबशार है
जिसे मैं एक ही जगह खड़ा देखता हूँ
ऐसा चिकना और गतिमान
ऐसा मूर्त सुंदर उज्ज्वल।

इन पंक्तियों को देखने के बाद भी क्या यह कहने की गुंजाइश रह जाती है कि शमशेर नारी-देह का वर्णन करते समय आवरण-सा डाल देते हैं? यह एक अत्यंत स्थिर, स्वस्थ कलाकार-मन द्वारा किया गया वर्णन है। वरना नारी-देह को 'आबशार' कहना सबके बूते की बात नहीं।

बिल्कुल आरंभिक दौर में 'फिर भी क्यों' जैसी कविता से ही उनकी प्रणय-भावना के खास रंग को पहचाना जा सकता था। इसमें वे अपनी प्रेमिका को 'छोटा-सा ताल', 'लहर हलकी-सी' तो कहते ही हैं, साथ-साथ उसे 'घिरा फैलाव' कहकर पुकारते हैं। फैले हुए जल को यदि घेर

दिया जाए तो उसमें जबर्दस्त ऊर्जा की संभावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। शमशेर अनायास ही प्रणय-संवेदना को कोमलता को एक अत्यंत उदात्त स्तर पर इसी तरह प्रतिष्ठित कर देते हैं। 'हल्की मीठी चा-सा दिन' हो, 'ठंडी सुनहरी धूप' हो, तो प्रेमिका की याद आना स्वाभाविक है :

पलकों पर हौले-हौले
तुम्हारे फूल-से पाँव
मानो भूल कर पड़ते
हृदय के सपनों पर मेरे।
अकेला हूँ, आओ (दूब)

यह आमंत्रण, उनके यहाँ हमेशा 'मुलायम बाहों सा अपनाव' वाली कोमलता लिए हुए नहीं होता। प्रेम की यह अभिलाषा शमशेर के यहाँ कितनी उत्कट है और वह किस तरह उनके व्यक्तित्व पर छाई हुई है, यह 'आओ' शीर्षक कविता पढ़कर जाना जा सकता है। इस कविता में 'भीने गुलाब-पीले गुलाब के' पाल गिराए तैरती आती बहार में जाफरान हवा में ही नहीं, संसार में भी घुल जाता है। प्रेमिका के खो जाने का अहसास उनके अकेलेपन को गहरा कर देता है। वो एक सुराही, एक चटाई और अपने पड़ोसी ज़रा से आकाश के साथ खुश तो हैं (गालिब की डायरी याद कीजिए) पर खोई हुई प्रेमिका के बिना यह अकेलापन 'दीदों की वीरानी' में तब्दील हो जाता है। वे कहते हैं :

शेर में ही तुमको समाना है अगर
ज़िंदगी में आओ, मुजस्सिम
बहरतौर चली आओ।

'मुजस्सिम' और 'बहरतौर' का इस्तेमाल इस बुलावे में वह उत्कटता भर देता है, जो कविता के अंत में और भी प्रखर ढंग से यों अभिव्यक्त होती है :

तुम आओ, तो खुद घर मेरा आ जाएगा
इस कोने - मकाँ में
तुम जिसकी
लय हो।
उन ऐन खामोशी की-हया-भरी
इन सिम्तों की पहनाइयाँ मुझको
पहनाओ!
इस अंदाज़ से अपनाओ
जिसे दर्द की बेगानारवी कहें
बादल की हँसी कहें
जिसे कोयल की
तूफान भरी सदियों की
चीखें
कि जिसे 'हम-तुम' कहें।

यहाँ कोमल सा आमंत्रण 'आओ' ज़िंदगी की भयानक तड़प भी बन जाता है। सिम्तों की पहनाइयाँ (दिशाओं का विस्तार), बादल की हँसी, कोयल की तूफान भरी सदियों की चीखें इस 'आओ' को दिल की अनंत गहराइयों से निकली पुकार में बदल देती हैं। यह एक नया प्रेमी-स्वर है, हिंदी कविता में अपनी अलग जगह बनाता हुआ।

शमशेर के प्रेमानुभवों की अभिव्यक्तियों में हमेशा एक उदात्तभाव रहता है। उदाहरण के लिए उनकी कुछ ऐसी कविताएँ देखी जा सकती हैं। 'चेहरे की शामों में' शीर्षक कविता में शाम के जल में डोलती हुई नावों को देखकर प्रेमिका के चेहरे पर पड़ती शाम की याद आ जाती है

और उसके धीरे-धीरे हिलते होंठ याद आते हैं, 'चेहरे की शामों में होंठों की किश्तियाँ/ हौले-हौले हौले-हौलेऽऽ/ हिलतीं/ मौन-मधुर इनमें ही भरी हुई रहती हैं/ चुम्बन की मिष्टियाँ "। किश्तियाँ और मिष्टियाँ जिस कोमल प्रणय-संवेदना का संचार करती हैं, वह बहुत विराट रूप ग्रहण कर लेती है जब इस शाम की नदी में चारों ओर से ढलती सृष्टियाँ नज़र आ जाती हैं और धीरे-धीरे अपना भार तौलते हुए 'गहराता आसमान/ झुकता आसमान' भी दिखलाई पड़ता है। उसी तरह 'प्यार का मौसोलियम' में ताजमहल को 'संगमर्मर में समाया हुआ प्यार', 'प्यार का मौसोलियम' कहने के बाद खुद अपने प्यार के मौसोलियम की चर्चा करते हैं :

तारकों की झिलमिली से झाँकता हूँ
व्योम के मौसोलियम में
ताज उसका अमर नगदर्पण मैं उसी में झाँकता हूँ
अनन्त तक।

'व्योम के मौसोलियम' की कल्पना, ताज जिसका नगदर्पण है, प्रेम की उस उदात्त भावना के बिना संभव नहीं, जिसका कमल फैलकर आकाश जितना विशाल हो जाता है। उनकी प्रेमानुभूति इसीलिए विचित्र है कि उसमें पड़कर जिस क्षण उनकी देह देर तक बेंत-सी थरथराती रहती है, उसी क्षण 'समस्त वातावरण/ मानो झंझावात' से भरा हुआ मालूम पड़ता है। उनकी प्रेम-भावना सिर्फ उनमें थरथराहट नहीं उत्पन्न करती, उसका वृत्त फैलते-फैलते सारे वातावरण को झंझोड़ने लगता है, उसमें तूफान-सा बरपा कर देता है।

23.3 शमशेर की कविता : आशंसा के आयाम

अपने पहले संग्रह की भूमिका में शमशेर ने इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया है कि लोगों को उनकी रचनाओं से लुत्फ उठाने में दिक्कत महसूस होती है। बाद में उन्होंने कविता लिखने के अपने तरीके का खुलासा किया है और खास अपने लहज़े, खास अपने मन के रंग, अपनी लय का ज़िक्र किया है, जिसमें सपने की तरह एक उलझी हुई याद के बहुत अपने छायाचित्र की तरह उनकी बात रखी जाती है। इस वक्तव्य का असर हो या हिंदी में प्रचलित काव्य-अभिरुचि का, उनकी कविताओं के नएपन को पहचाना गया, लेकिन प्रायः यह मान लिया गया कि उनका मन बहुत उलझा रहता है और इसीलिए वे अपने इस उलझे-पुलझेपन को बिना 'कलात्मक संगठन' की परवाह किए अपनी कविताओं में रख भर देते हैं। आश्चर्य है कि शमशेर की कविता के मामले में डॉ. रामविलास शर्मा, मलयज, श्रीकांत वर्मा, रघुवंश जैसे लोग लगभग एक-सा ख्याल रखते हैं। डॉ. शर्मा कहते हैं कि उनकी कविता उस कोंपल की तरह है, बहुत स्वाभाविक, लेकिन ऐसी कोंपल जो, मानो, बढ़कर पत्ती बनना नहीं जानती। उसे अनगढ़ सौंदर्य भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि अनगढ़ वह जो गढ़ा जा सके। यहाँ गढ़ने लायक कुछ भी नहीं है, सबकुछ अस्फुट, असंगठित, रूप-अरूप के बीच, सृष्टि के बीच ब्रह्म जैसा।" शमशेर के प्रति अपने सारे प्यार के बावजूद डॉ. शर्मा को कहना ही पड़ता है कि कविता बनने के पहले उसका अव्यक्त रूप कैसा होता है, यह शमशेर की कविता पढ़कर जाना जा सकता है। उनसे बहुत अलग ख्याल मलयज का नहीं है, जो बड़े काव्यात्मक ढंग से कहते हैं, "शमशेरजी के बारे में सोचते समय हमेशा चार्ल्स लैम्ब के एक आत्मपरक निबंध 'ड्रीम चिल्ड्रेन' की याद आती है। कल्पना-निर्मित शिशु, जो यथार्थ की उंगलियों से छूते ही तिरोहित हो जाते हैं।" आप उनकी कविताओं से अर्थ प्राप्त कर ही नहीं सकते क्योंकि वे तो शब्दों के रूढ़ अर्थों से मुक्त ऐसी दुनिया की रचना करते हैं जो 'सिर्फ' उन्हीं की है।

आलोचना की इस स्वप्न-भाषा पर शमशेर के प्रेमी फिदा होना चाहें तो हों, दरअसल मलयज कहना यह चाहते हैं कि आप शमशेर की कविता का अर्थ नही समझ सकते, "दूसरे के लिए बंद, यह 'बात बोलेगी, हम नहीं' की दुनिया है। ऐसी कि उसको खोलने की चाबी खुद उस दुनिया के भीतर ही कहीं रह गयी है।" श्रीकांत वर्मा के लिए भी शमशेर की कविता का संसार एक तिलिस्म है, जिसे भेदना कठिन है, 'शमशेर की दुनिया अर्थ की नहीं, ध्वनियों की,

तिलस्मी, जादुई, ध्वनियों की दुनिया है।" अर्थ तो जादू का भी होता है, लेकिन प्रलाप का?" शमशेर ने प्रलाप की सीमा तक पहुँचकर अभिव्यक्ति की-।" फिर वे एक बुनियादी सवाल पेश कर देते हैं, "क्या कोई कवि यह जानता है कि वह क्या व्यक्त करना चाहता है?" श्रीकांत वर्मा समझते हैं कि शमशेर की कविता सम्मोहित करती है, बांधती है और रघुवंशजी का भी यह विचार है कि उनके बिंबों, प्रभाव-चित्रों, कल्पना-तरंगों तथा ध्वनि-बिंबों में उनके व्यक्तित्व का आकर्षण पाठकों को संवेदित न करके सम्मोहित करता है और इस मनःस्थिति में उनकी कविता में व्यक्त व्यक्तिनिष्ठा और सामाजिकता एक ऐंद्रजालिक लीला के अंग मालूम पड़ते हैं। विचारधाराओं की सरहदों के पार कविता संबंधी संवेदना का कोई एक अदृश्य-सूत्र इन सारे आलोचकों को एक-दूसरे से बाँधे हुए है।

अगर ये सारी बातें सही हैं, तो फिर शमशेर अपनी ही निगाह में एक असफल कवि ठहरते हैं क्योंकि वे तो सामाजिक यथार्थ के व्यक्त रूपों का ही अर्थ नहीं समझना चाहते थे, बल्कि वह यथार्थ जहाँ इशारों में, भंगिमाओं में व्यक्त होता है, उसे भी अभिव्यक्ति देना चाहते थे। शमशेर की सारी कविताओं का अर्थ एक नहीं है, फिर भी उन सबके लिए समझ का कोई एक आधार-सूत्र भी खोजना हो, तो कह सकते हैं कि वो सामाजिक संबंधों को देखने, समझने की कवि की कोशिश का नतीजा है। इस संबंध में शमशेर का ख्याल यह है कि "हमारे सामाजिक संबंधों की डोरियाँ सिर्फ शब्द या स्वर या वेशभूषा या रीतिरिवाज ही नहीं, बल्कि इन सबके मिले-जुले इतिहास की गति भी है, जिसको कि एक चित्र में, रेखा या एक सिम्फनी में संगीत का रूप दिया जा सकता है। इस ज़िंदा, प्रति दिन के, इतिहास को अपने-अपने माध्यम से हर कलाकार पकड़ता है और भरसक व्यक्त करने की कोशिश करता है।" शमशेर की कविताओं में ज़िंदा इतिहास के, सामाजिक संबंधों की डोरियों के बहुत ठोस, बहुत मूर्त चित्र हैं, तो अनेक स्थलों पर स्वाभाविक रूप से मूर्त और अमूर्त का मिश्रण भी मिलता है। 'अमन का राग' में अगर यह चीज़ बहुत स्पष्ट और एकदम मूर्त है, तो 'एक नीला दरिया बरस रहा', 'टूटी हुई, बिखरी हुई', 'होली : रंग और दिशाएँ', 'बाढ़ 1948' जैसी कविताओं में मूर्त और अमूर्त का मिला-जुला रूप है।

'अमन् का राग' जैसी स्पष्ट अर्थवाली कविता (जो विश्वशांति की उत्कट अभिलाषा की अत्यंत सक्षम अभिव्यक्ति है) डॉ. रामविलास शर्मा को यथार्थ से दूर फैंटेसी के लोक की लगती है। क्या इसलिए कि विश्वशांति अभी यथार्थ रूप ग्रहण नहीं कर सकी है? शमशेर कहते हैं, "देखो न हकीकत हमारे समय की कि जिसमें/ होमर एक हिंदी कवि सरदार जाफरी को/ इशारे से अपने करीब बुला रहा है/ - मैं शेक्सपीयर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में झलकता हुआ देख रहा हूँ/ - और आज तो मेरा टैगोर मेरा हाफिज़ मेरा तुलसी मेरा/ गालिब/ एक-एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का/ कुशल आपरेटर है" यह कितनी भव्यकल्पना है, विश्वबंधुता की यह भावना राष्ट्रीय सीमाओं को कितना तुच्छ बना देती है! एकता सिर्फ़ होमर, कालिदास, सरदार जाफरी, गालिब, तुलसी आदि की नहीं है, दुनिया की सारी जनता के एक होने का एक विलक्षण सपना है, "हम एक साथ उषा के मधुर अधर बन उठे/ सुलग उठे हैं/ सब एक साथ ढाई अरब धड़कनों में बज उठे हैं/ डॉ. आनंद की तरह यह हमारी गाती हुई एकता..." डॉ. शर्मा को इन ढाई अरब धड़कनों में सिंफोनिक आनंद की तरह बज उठने की कल्पना से रहस्यवादियों का अनहदनाद याद आ जाता है। दरअसल उनके ठोस यथार्थवादी मन को जो भावना फैंटेसी लगती है, वह शमशेर को 'अमर सपनों की हकीकत' नज़र आती है जिसे देख पाना ही अपने-आपको समझ पाना है। 'अमन का राग' विश्वशांति की कामना की अत्यंत उदात्त अभिव्यक्ति है, जिसे शमशेर जितना सरल होकर ही समझा जा सकता है। लेकिन साही इस कविता पर टिप्पणी करते हुए बतलाते हैं कि शमशेर के यहाँ काल देश में परिवर्तित होकर 'यूटोपिया' का निर्माण करता है और इस कविता में शमशेर की बेचैन छटपटाहट गति और प्रगति के बीच संतुलन खोजती हुई उन्मुक्त होती दिखाई पड़ती है। 'अमन का राग' जैसी सीधी-सरल कविता पर इतनी कुहरिल भाषा में आलोचना क्यों इस कारण है कि शमशेर में अमूर्तन अधिक है?

दरअसल शमशेर की जो कविताएँ इतनी सरल नहीं हैं (जितनी 'अम्न का राग', 'ओ मेरे घर', 'संसार के चक्के पर है', आदि), वे भी 'स्वप्न-शिशु' नहीं है कि उनका अर्थ समझने की कोशिश करते ही उनका सौंदर्य नष्ट हो जाए। यह ज़रूरी है कि शमशेर की काव्य-संवेदना के केंद्रीय बिंदु को समझा जाए। 'संसार के चक्के पर हैं' नामक कविता की ये पंक्तियाँ उनकी कविताओं में पाई जाने वाली वेदना के स्वरूप को स्पष्ट करने में हमारी मदद करती है :

शरीर लड़े जा रहा, लड़े जा रहा है।
हृदय होम हो रहा है।
धरती के मनुष्य सा
निरंतर निरंतर
उसे मीठी
नींद कब
आएगी
वह नींद
जो मीठी सुबह का
उजाला लाये।
चतुर्दिक
समान रूप
उजाला।

इस धरती के मनुष्य की मीठी नींद और चतुर्दिक समान रूप उजाले का सपना ही शमशेर की कविताओं का प्राण-तत्व है। लेकिन इस भोले-भाले सपने को देख पाने के लिए तो सरल हृदयवाली आँखें चाहिएँ, जो दुर्भाग्य से बहुत कम को नसीब होती हैं। इसके साथ ही, शमशेर की जो अपनी 'टेकनीक' है, हालांकि हर जगह वह एक-सी नहीं है, उसे समझना भी ज़रूरी है। 'अमूर्त कला' शीर्षक अपने निबंध में वे कहते हैं कि जिसे हम टेकनीक या कला की अभिव्यक्ति का ढंग-ताल, छंद, तोल विन्यास का हिसाब रखना कहते हैं, वह सिर्फ जीवन की गुंजलक अनुभूतियों की गति, उसकी परछाई, उसका आभास मात्र है। इसलिए शमशेर के सामने अभिव्यक्ति के जितने ढंग मौजूद हैं, यथार्थवादी कला के और रूपवादी कला के, वे उनका महत्व समझते हुए भी खुद को उनके दायरे में नहीं बांधते।

शमशेर जीवन की अपनी खास अनुभूतियों को व्यक्त करना चाहते हैं। 'लय, गति, कंपोजीशन, संतुलन के जो रूल और कटे-छँटे उसूल हैं, उनके अलावा भी बहुत से हैं, जिन्हें हर नया कलाकार खोजता है, जो शायद पहले भी ज्यादा लचीले, नाजुक और मार्मिक हैं।" ऊपर जिन कविताओं का हवाला दिया गया है, उनमें अपनी अन्य कविताओं की तरह ही, शमशेर इस लचीलेपन, नज़ाकत और मार्मिकता की खोज करते दिखाई देते हैं। 'टूटी हुई, बिखरी हुई' जैसी कविता या 'एक नीला दरिया बरस रहा' में उनकी छोटी कविताओं की तरह कोई एक केंद्रीय भाव, या मात्र किसी एक अनुभूति का चित्र नहीं है। डॉ. नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी से बात करते हुए शमशेर ने इन्हीं कविताओं के संदर्भ में कहा, "जब मैं लिख रहा हूँ तो अनुभूतियों का जो पुंज है वह अपने-आप में ऐसा रूप ले रहा है जो काव्यात्मक है।" जिस अजीब-से नियम से कविता उनके यहाँ रूप ग्रहण करती है, उसका अंदाज़ा कुछ-कुछ इस तथ्य से हो सकेगा कि 'टूटी हुई, बिखरी हुई 'दरअसल शमशेर की डायरी थी, जिसे जब नामवरजी ने देखा तो उन्हें अचानक लगा कि यह तो कविता है। लेकिन इस तरह की कविता को पढ़ते समय हम अक्सर उलझ जाते हैं क्योंकि हमको ऊपर से नीचे तक किसी एक भाव का विस्तार या व्याख्या होती दिखाई नहीं देती। शीर्षक की तरह ही कविता टूटी हुई लगती है। इसे स्पष्ट करते हुए भी इसी बातचीत में शमशेर बताते हैं, " ... मेरे मिज़ाज़ में और कविता के निर्माण में भी ये ग़ज़ल का शेर है इसका बहुत हाथ है। यह एक अनुभूति की इकाई है और कई अनुभूतियाँ एक के बाद ऐसी चली आती हैं - वह सिलसिला कहीं न कहीं सबकांशस में

होता है।" जैसे ग़ज़ल में होता है, एक शेर यानी एक भाव-संकेत, फिर दूसरा शेर - दूसरा भाव - संकेत और यह सिलसिला चलता है।

शमशेर का उर्दू-संस्कारों में रचा-बसा कवि मानस हिंदी कविता में इस रूपाकार को एक विलक्षण अंदाज़ देता है, यह ऊपर की कविताओं को ध्यान से पढ़कर समझा जा सकता है। वे स्पष्ट करते हैं, " ... यह जो लिखा है, वह ग़ज़ल के अलग-अलग शेर की तरह है। 'टूटी हुई बिखरी हुई' में जो अलग-अलग पैराग्राफ हैं न, छोटे-बड़े, इनका अंदाज़ भी गज़ल जैसा है।" अलग-अलग अनुभूतियों के संकेतों के पुंज के रूप में अगर यह कविता पढ़ी जाए, तो अलग ही असर छोड़ती है। इसका अंत बहुत अर्थपूर्ण है :

बहुत-से तीर बहुत-सी नावें बहुत-से पर
इधर
उड़ते हुए आए, घूमते हुए गुजर गए
मुझको लिए, सबके सब। तुमने समझा
कि उनमें तुम थे। नहीं, नहीं, नहीं।
उनमें कोई न था। नहीं, नहीं, नहीं।
उनमें कोई न था। सिर्फ बीती हुई
अनहोनी और होनी की उदास
रंगीनियाँ थीं। फ़क़त।

जो उनके जीवन में गुज़र चुकी हैं, ऐसी अनहोनी और होनी की, सबकी अलग-अलग अभिव्यक्ति उनके यहाँ है। डॉ. शर्मा को यह कविता रुग्ण मन की उपज लगी थी। अनेक बार उनकी बात मानकर अपने मन को स्वस्थ और शुभ की ओर मोड़ने के लिए उनकी पसंद के विषयों पर कविता लिखने वाले शमशेर को ऐसा नहीं लगा। इस कविता के एक-दो टुकड़े आप भी देखिए और खोजने की कोशिश कीजिए कि रुग्णता कहां है। स्नेह और प्रेम से ओतप्रोत हृदय का यह भीगा हुआ स्वर :

मेरी बाँसुरी है एक नाव की पतवार
जिसके स्वर गीले हो गए हैं,
छप्-छप्-छप् मेरा हृदय कर रहा है
छप् छप् छप्।
ठुकराए हुए प्रेम के बीच उसकी भीषण अभिलाषा
मुझको प्यास के पहाड़ों पर लिटा दो जहाँ मैं
एक झरने की तरह तड़प रहा हूँ।
मुझको सूरज की किरनों में जलने दो
ताकि उसकी आँच और लपट में तुम
फौवारे की तरह नाचो।

या प्रेम का एक पूरा दर्शन :

हाँ, तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ
लहरों से करती हैं
जिनमें वह फँसने नहीं आतीं,
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं
जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पातीं,
तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।

यह समझना मुश्किल है कि इन पंक्तियों में रुग्ण मन की अभिव्यक्ति किस तरह और कहाँ है! डॉ. शर्मा के मुकाबले शमशेर की दुनिया के इस टूटे-बिखरेपन को ज्यादा सही ढंग से अशोक

वाजपेयी ने समझा है, 'उनकी दुनिया 'टूटी हुई, बिखरी हुई ' है, पर अपनी सुंदरता और अर्थमयता में मुकम्मल, उसमें टूटे बिखरे हुए - से ही अपनी सजग, पर सहज, संयमित, पर तनाव भरी मानवीयता को सहेजने और हम तक पहुँचाने की संकोच और संदेह भरी चेष्टा है।" दरअसल शमशेर के इस संकोच और संदेह को निधड़क सत्य - भाषण करने वाले एक रोगजनित कमज़ोरी मानते हैं।

'एक नीला दरिया है बरस रहा ' इस शिल्प की एक कविता है, जिसके बीच में ये पंक्तियाँ आती हैं:

इसमें और कुछ नहीं।
कोई संगीत नहीं। केवल प्रलाप
केवल तम।
केवल प्रलाप। केवल मैं आप आप।
अनाप शनाप।

श्रीकांत वर्मा को ऐसा लगता है कि शमशेर ने इस कविता में प्रलाप की सीमा तक पहुँचकर अभिव्यक्ति की। ज़ाहिर है, उन्हें समझने में कठिनाई हुई कि इस कविता में आखिर शमशेर कहना क्या चाहते हैं, उनके ठीक पहले के इस हिस्से को देखिए, उससे मिलाकर ऊपर की पंक्तियों को पढ़िए और देखिए कि इनमें कोई अर्थ है या नहीं, या शमशेर ने मात्र प्रलाप किया है :

समय के
चौराहों के चकित केंद्रों से
उद्‌भूत होता है कोई 'उसे व्यक्ति
कहो '
कि यही काव्य है।
आत्मतम।
इसीलिए उसमें अपने को खो दिया
जाना गवारा करता हूँ
क्योंकि वहाँ मेरा एक महीन युग-भाव है
वहीं-शायद मेरे लिए - मात्र। शायद
मेरे ही अनेक बिंबों के लिए मात्र।
जिन्हें मेरे पाठक कहा जाए मात्र।

इतिहास के घटनाक्रम के बीच अचानक बन गए केंद्रों में जो व्यक्ति होता है, उसे ही अभिव्यक्ति देना शमशेर का उद्देश्य है। उस व्यक्ति में अपने-आपको खो दिया जाना उन्हें इसलिए मंजूर है कि उसमें एक सूक्ष्म-युग-भाव है जो उनके अपने पाठकों को छोड़ और किसी को शायद ही दिखे। उस व्यक्ति की आशा, आकांक्षा, उसकी पीड़ा, उन्हीं 'क्षणिक समर्थताओं ' को ही वे 'आत्मतम काव्य ' कहते हैं। वे ऐसी ही कविता लिखना पसंद करते हैं क्योंकि प्रचलित धारणा के विपरीत वे इन्हीं वैयक्तिक अनुभूतियों के अंदर अपने ज़माने के भावों की अभिव्यक्तियाँ देख पाते हैं। पर उनके लिए यह बात जितनी स्पष्ट है, उतनी औरों के लिए नहीं। इसलिए वे आगे मात्र 'मेरे पाठक ' जिन्हें कहा जा सकता है, उनके लिए अपने को सार्थक मानते हैं।

अत्यंत स्पष्ट विचारों, युगानुकूल भावों और चित्रों के आग्रही लोगों के लिए तो इस तरह की कविता में कोई सुसंगत, सार्थक विचार नहीं मिलते, इसलिए वे उसे केवल 'प्रलाप ' मानते हैं। कविता के अंत में पाठकों के लिए एक चुनौती भरा आमंत्रण भी है। पश्चिम और पूर्व की मिलन सीमा जिनमें दिखलाई पड़ती हो, ऐसी भाषाओं के फोनेमिक्स के पैमाने में इस शराब से:

नशा मुझे नहीं होता। नहीं होता
मुझे पीने वालों को
होता
है-मेरी कविता को
अगर वो उठा सकें और एक घूँट
पी सकें।

डॉ. शर्मा जैसे लोग समझते हैं कि अपने रुग्ण स्वप्नजीवी मन में अस्फुट-सी बुद्-बुद् में विभोर होकर कुछ अविकसित-सी फुसफुसाहट ही शमशेर की कविता है, जैसे नशे में डूबा कोई शराबी कुछ बक रहा हो, जिसमें कोई सार्थक क्रम नहीं होता। कई लोग तो उसमें अर्थ की संभावना से उसके अस्तित्व की समाप्ति ही देखते हैं। इन लोगों के लिए उस पैमाने की कल्पना का पाना असंभव है, जो शमशेर के हाथों में है। कितना विशाल पैमाना है वह - पूर्व और पश्चिम की मिलन सीमा को ध्वनित करती भाषाओं के 'फोनेमिक्स' का पैमाना! प्रेम करती भाषाओं के 'फोनेमिक्स' का पैमाना! प्रेम और एकता की यह विराट् संवेदना 'गिन्सबर्ग के लिए' शीर्षक कविता में भी देखी जा सकती है :

हमारे बीच कोई सीमा-रेखा नहीं
सिवाय सितारों के पहाड़ों के
बहारों-त्योहारों के
कोई सीमा-रेखा नहीं।
भाषा? हिश्त!
हम होठों में उछलता रक्त हैं हृदय में
आँसू और शराब शरारत हँसी
हम उपहास हैं सीमा-रेखाओं के-हम
लहरें भाषाओं कै आर-पार

अलग-अलग प्रदेशों और मुल्कों के लोगों को अलग करने वाली जो रेखा है, वह भी यहाँ निषेधात्मक न होकर कितनी आकर्षक है। यह राष्ट्रीय या देशीय सीमा अलग-अलग त्योहारों की, अलग-अलग तरह के पहाड़ों की, बहारों की है। जाहिर है यह सीमा-रेखा अलग करने से ज्यादा जोड़ने का काम करती है। इन पंक्तियों में भी शराब है। पर इस शराब के नशे की उनकी व्याख्या देखने लायक है, "चाहे जो कला हो, उसमें एक खास तरह का नशा होता है, जोकि दूसरों पर भी छा जाता है, कमोबेश। और हर कलाकार अपनी कला के एक खास तरह के नशे का आदी हो जाता है। सिर्फ चोटी के महान् कलाकार भी अपनी रचना में एक नहीं बहुत तरह के कलात्मक नशों का समावेश कर सकने की क्षमता रखते हैं, और उन नशों पर उनका अधिकार होता है, और उन नशों से वे अपने देश और युग को झुमा देते हैं।" शमशेर को अपनी क्षमता पर यकीन है, इसीलिए वे कह पाते हैं कि "नशा मुझे नहीं होता।" इस नशे में वे ही झूम सकते हैं जो उनकी कविता का जाम उठाने की कूवत रखते हों।

शमशेर की कविता क्रमशः सरलता और बोधगम्यता की ओर बढ़ती चली गई है। वैसे, सादगी शुरू से ही उनका आदर्श रही है। उनके अंतिम संग्रह 'काल तुझसे होड़ है मेरी' की अनेक कविताओं में इस सादगी के अनुपम उदाहरण देखे जा सकते हैं। इस संग्रह की एक कविता की इन पंक्तियों में सादगी का यह रूप देखते ही बनता है, "अब/ जबकि हम उस उम्र को आ पहुँचे हैं/ जिसमें कि/ देखो न/ प्रेम के मानी हैं कुछ और/ दोस्त-इन्सान के मानी हैं कुछ और/ और तकरीबन हर चेहरा जब कि/ अपना ही नज़र आवे है/ क्या कहें उसमें तब-/ रूमान के मानी क्या हैं/ इंसान के मानी क्या हैं/ और यह भी कि खुदा क्या है ईश्वर क्या है वगैरा -" सरलता के इस धरातल पर पहुँचना, जब हर चेहरा अपना ही नज़र आए, तभी संभव है जब व्यक्तित्व का विस्तार कुछ इस कदर हो जाए कि :

अपनी भाषा तो भूल ही गया जैसे
चारों तरफ की भाषा ऐसी हो गई
जैसे पेड़ पौधों की होती है,
नदियों में लहरों की होती है।
यह विस्मृति गहरी आत्म-सजगता के बिना संभव नहीं।

शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं को सरल कहने पर हैरत हो सकती है। दरअसल उनकी कविता के पाठक बनने के लिए ज़रूरी है कि कविता से आनंद प्राप्त करने की जितनी विधियाँ बन चुकी हैं, उन सबसे मुक्ति प्राप्त की जाए। यह अभी संभव नहीं हो सका है, क्योंकि हम कितने ही दावे क्यों न कर लें, प्रत्येक कवि को उसके व्यक्तित्व की अपने ढंग से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देने को तैयार नहीं हैं। हम उसे उसकी शर्त पर नहीं, अपनी शर्त पर ही स्वीकार करना चाहते हैं। जबकि शमशेर उस पाठक से मुलाकात के मुतजिर हैं, जिससे लम्हा भर की मुलाकात हो, तो वह उन्हें परस्पर निर्भर बनाकर फिर मुक्त कर दे। यह प्रक्रिया ऐंद्रजालिक नहीं है और सम्मोहन की तो कतई नहीं। इसमें एक दूरी की भी अपेक्षा है। अपने नज़रिए के साथ-साथ कवि के नज़रिए को महत्व देना भी ज़रूरी है।

उर्दू के आलोचक डॉ. मोहम्मद हसन ने उन्हें और उनकी सरलता को कहीं ज्यादा अच्छे ढंग से समझा। वे कहते हैं कि शमशेर एक ऐसा शायर है, "... जो अपनी दुनिया में बहुत कुछ ढूँढ़ रहा है। उसकी अपनी उदासियाँ हैं, उसका अपना खरापन है और अपने दर्द, दुख, अपने जख्म और अपनी पीड़ा के द्वारा अपने को पहचानना चाहता है।" उनकी शायरी एक ऐसे व्यक्तित्व की पहचान (है) जो चाहत के अनंत क्षितिज और उपलब्धियों की सीमाओं के बीच की टकराहट की आवाज़ उनके यहाँ इश्क की अवधारणा में रूपायित हुई है। क्योंकि शमशेर के यहाँ इश्क महज एक वासना नहीं है। उनका दुख बिल्कुल निजी और जाती होने पर भी केवल निजी और जाती नहीं है बल्कि उसके पीछे कास्मिक दर्द की गूँज सुनाई पड़ती है। डॉ. हसन लिखते हैं कि उनकी 'बुनियादी थीम' वो तड़प है जो महबूब के नाम के साथ जुड़ी हुई है। यह अलग बात है कि बाद में चलकर उसमें दुनिया के दुख और दर्द भी शामिल हो गए जो अंततः पूरी ज़िंदगी से पैदा होने वाली चेतना से बावस्ता है। शमशेर की कविता में इस तड़प और दर्दमंदी से पैदा होने वाली इंसानियत की आवाज़ हर तरफ जगमगाती है।"

23.4 सारांश

- शमशेर के अनुसार कलाकार जीवन के किसी जाहिरी रूप को अभिव्यक्त नहीं करता, वह उसके कलात्मक रूप को अभिव्यक्त करता है।
- शमशेर को मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी मानते हुए भी उन्हें आत्मपरक कवि कहा गया है क्योंकि उनकी कविताओं में सामाजिक विषयों का फैलाव नहीं है। जीवन के छोटे-छोटे सुखःदुख, विचार, भाव, मनःस्थितियाँ उनके काव्य का विषय बनती हैं लेकिन जिन्हें वे उनके पूरे संदर्भों में रख कर चित्रित करते हैं।
- शमशेर की कविताओं का मूलभाव अकेलापन है। अकेलापन, अवसाद, दुख अंधेरा उनकी कविताओं में खूब आता है किंतु, अति तीव्र जाग्रत चेतना के साथ जिसमें समस्त इंद्रियाँ प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगती हैं।
- मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से शमशेर बहुत प्रभावित हुए। वे मानते थे कि जीवन को समझने के लिए मार्क्सवाद ज़रूरी है। किंतु मार्क्सवादी प्रभाव का प्रतिफलन उनके नज़रिये में ही हुआ, व्यापक सामाजिक विषयों की ओर उन्मुख होने में नहीं हालाँकि अकेलेपन के भाव का उनमें लोप हो गया और मनुष्य और समाज उनकी कविता में एक नयी उमंग, उम्मीद और उल्लास के साथ आए। मार्क्सवाद से समाज में अकेले व्यक्ति की जगह को उन्होंने पहचाना, इतिहास के अंग के रूप में व्यक्ति किस प्रकार चारों ओर से संबद्ध है, चाहे-

अनचाहे - इस सत्य का उन्हें आभास हुआ। और इस सबका असर उनकी रचना पर पड़ा इसने जीवन और उसके सौंदर्य के प्रति उनकी आस्था को दृढ़ किया।

- शमशेर की सौंदर्य संवेदना का विस्तार प्रकृति, मनुष्य से लेकर मानवीय भावों तक है। प्रकृति उनके काव्य में यथार्थवादी ढंग से अंकित नहीं होती। अभिव्यक्त प्रकृति-चित्र में उनका मन इस कदर घुला-मिला रहता है कि यह बता पाना कठिन होता है कि प्राकृतिक दृश्य मन पर असर डाल रहा है या कवि का मन ही प्रकृति को अपने ख्यालों के रंग मे निहार रहा है।

- इसी प्रकार प्रेम और सौंदर्य भी शमशेर के लिए उन अर्थों में प्रेम-सौंदर्य नहीं है जिन अर्थों में शृंगारवादी उसे मानते हैं या मार्क्सवादी उसे नकारते हैं। शमशेर के लिए कला में खिलने वाला प्रेम का कँवल अपरिमित विस्तार रखता है, और इसी व्यापकता में वह सौंदर्य की सृष्टि भी करता है। नारी सौंदर्य के जो दो-चार चित्र उन्होंने खींचे हैं उनमें भी शमशेर का लक्ष्य नारी नहीं बल्कि उस सौंदर्य में शारीरिक मुद्राओं का आकर्षण और उनका कलात्मक चित्रण है।

- शमशेर को समझने में रचनाकारों, आलोचकों को दिक्कत होती रही है क्योंकि जीवन को, यथार्थ को खंड-खंड देखने की जो प्रवृत्ति है वह हमेशा बाधा का काम करती है। शमशेर का मानना है कि 'हमारे सामांजिक संबंधों की डोरियाँ सिर्फ शब्द या स्वर या वेशभूषा या रीतिरिवाज़ ही नहीं, बल्कि इन सबके मिले-जुले इतिहास की गति भी है, जिसको कि एक चित्र में, रेखा में या सिम्फनी में संगीत का रूप दिया जा सकता है। इस ज़िंदा, प्रतिदिन के इतिहास को हर कलाकार अपने-अपने ढंग से पकड़ता है और भरसक व्यक्त करने की 'कोशिश करता है'। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि शमशेर को समझने की कुंजी यही है।

23.5 प्रश्न

1. शमशेर की जीवनदृष्टि और कला दृष्टि की व्याख्या कीजिए।
2. शमशेर की निजभाव की कविताओं की विशेषताएँ बताइये।
3. शमशेर के काव्य में मनुष्य और समाज किस रूप में आते हैं, विवेचना कीजिए।
4. शमशेर के काव्य को समझने के लिए कैसी तैयारी की ज़रूरत है?
5. शमशेर के काव्य का मूल स्वर क्या है?

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या	:	रामस्वरूप चतुर्वेदी
अज्ञेय : एक अध्ययन	:	भोलाभाई पटेल
अज्ञेय	:	रमेशचन्द्र शाह
अज्ञेय का संसार : शब्द और सत्य	:	अशोक वाजपेयी (सं.)
अज्ञेय	:	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (सं.)
तार सप्तक	:	सं. अज्ञेय
दूसरा सप्तक	:	सं. अज्ञेय
तीसरा सप्तक	:	सं. अज्ञेय
अज्ञेय की काव्यतितीर्षा	:	नन्दकिशोर आचार्य
अज्ञेय की कविता	:	चन्द्रकांत वांदिवाडेकर
आत्मनेपद	:	अज्ञेय
कविता के नये प्रतिमान	:	नामवर सिंह
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	:	नामवर सिंह

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY